* श्रीमहावीराय नमः *

जैन-समाज-दर्पण

सम्पादकः—

खुरई (सागर सी० पी०) निवासी

विद्यारत्न पं० कमलकुमार जैन शास्त्री 'कुमुद'

हेड मा० जैन स्कूल खंडवा सी० पी०

प्रकाशकः—

सूरजमल मोतीलाल जैन छावड़ा,

खंडवा (जिला निमाड़ सी० पी०)

प्रथमबार १९०० | प्रज्ञा पुस्तकमाला का नौवां पुष्प
अनंतचतुर्दशी वी. नि. सं. २४६३ | लागत मूल्य पांच आना

धन्यवाद और आभार।

(१) प्रस्तुत पुस्तक खंडवा निवासी श्रीमान् नाथालालजी जैन छावड़ा के साहाय्य से सर्व-साधारण के समक्ष उपस्थित हो रही है।

आप एक सहृदय, उदारमना और धार्मिक सज्जन हैं। आपके द्वारा ऐसे अनेक आदर्श कार्य चिरकाल से होते आये हैं। खंडवा जैन नवयुवक समाज के आप एक आदर्श युवक हैं। जागृति के कार्यों में आप अधिक सहयोग देते रहते हैं। समाज-सुधार की उज्ज्वल-भावना के साथ-साथ आपके जीवन में धार्मिक विश्वास की एक सम्मोहक पुट है। महाप्रभु भगवान् महावीर की भक्ति-धारा में सदा-सर्वदा अवगाहन करते रहने का यह फल है कि आप हरएक धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों में तन-मन-धन से जुट जाते हैं। आपका घराना एक आदर्श और मान्य है। इसमें ऐसे महनीय कार्य सदा होते आये हैं।

आपने इस पुस्तक के प्रकाशन में १०१) रु० प्रदान किये हैं एतदर्थ कोटिशः धन्यवाद। अन्य महानुभावों को आपका अनुकरण कर अपनी चञ्चला लक्ष्मी का सदुपयोग करना चाहिये।

व्यवस्थापक—

प्रज्ञा पुस्तक-माला, बरायठा।

(२) इस पुस्तक के संशोधन में श्रीयुत कविरत्न पं० कल्याण कुमार जी जैन "शशि" महोदय ने अत्यधिक सहायता पहुँचाई है एतदर्थ आपका आभारी हूँ। साथ में, मैं उन कवियों और कवियित्रियों को भी धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता कि जिन्होंने हमारी अभ्यर्थना को स्वीकृत कर अपनी अमूल्य नवीन कृतियों को इस पुस्तक में निहित करने की स्वीकृती प्रदान की है।

—सम्पादक।

समर्पण

श्रीमान् ....

....

जैन बान्धुवों! काव्यरूप में,
यह सात्विक-"समाज-दर्पण"
जीवन-जागृति के हित है,
कर-कमलों में सादर अर्पण ॥

—सम्पादक ।

प्रस्तावना ।

ईश्वर और जीव ध्रौव्य रूप में दो सत्य हैं—बीच का अन्तर मिटा कर इन दोनों को जो एक करती है उसका नाम कविता है ।

कविता लिखी नहीं जाती—जो लिखा जा सकता है—वह कविता नहीं हो सकती । और यदि इस ऊँचाई की कुछ सीढ़ियां उतर कर वह है भी तो उसे अब तक मैं स्वयं नहीं समझ सका ।

कविता जहाँ से बन कर निकलती है वह पूर्ण में निहित हो कर छोटी सी चीज है । और बड़ी चीजें छोटे ही आकार में देना जानती हैं । परन्तु यह सब कुछ कलयुग से द्वापर की ओर बढ़ने से नहीं अपितु सतयुग और वर्तमान का सम्बन्ध जोड़ने से संभव होता है । जब कि हम थोड़े में बहुत कुछ लेने-देने के आदान-प्रदान को पीछे छोड़ते जा रहे हैं ।

दूषित दृष्टि-कोण कविता का कलङ्क है । यह असम्भव नहीं है कि "जैन-समाज-दर्पण" इसका अपवाद न हो लेकिन जीवन के विजय लक्ष्य में रोड़े बन कर अटकने वाले प्रत्येक विषय की कठोर भर्त्सना पाप नहीं धर्म है । पर यह मेरा विषय नहीं, यह तो आपके समझने की बात है । किन्तु मैं तो केवल इतना कहना चाहता हूँ कि यदि इस पुस्तक में ऐसी वस्तुओं का समावेश हो गया है तो अवश्य ही समाज के लिये कल्याणकारी सिद्ध हो तथा दो सत्यों को परस्पर जोड़ने वाले आनन्द का सृजन करें ।

कल्याण कुटीर
रामपुर स्टेट ।

कल्याण कुमार जैन
'शशि'

विद्यारत्न, विद्याभूषण—

पं० कमलकुमारजी जैन शास्त्री "कुमुद"

हैड मास्टर जैन-स्कूल, खण्डवा (सी० पी०)

श्रीमान् पण्डित कल्याणकुमारजी जैन, 'शशि' कविरत्न

सम्पादकीय अभिमत।

आज सारे संसार में रोटी, वस्त्र, जीवन, स्वतन्त्रता, अधिकार, जागृति तथा और अन्यान्य आवश्यक कार्यों के लिये जोरदार प्रयत्न आरम्भ है। किन्तु हम नामधारी जैनी डेढ़ चाँवल की खिचड़ी पकाने में मस्त हैं। हमें संसार-राष्ट्र-समाज तथा धर्म की परवाह नहीं; इसीलिये आज हम इन सब से कोसों दूर हैं।

हम भूखों की कराह नहीं सुनते, बे मौत मरने वाले का सजीव दाह संस्कार देख आँसू नहीं गिराते। हमारे दायें-बायें आगे-पीछे चारों ओर क्षण-क्षण आहों के संसार बनते और मिटते हैं। भूखे, नङ्गे, चकोर बन कर पेट में आग की आहुति दे रहे हैं; माताएँ पर्दे के भीतर सड़-गल रही हैं; धन-बल पर मासूम बच्चियाँ वृद्धों की हविस पूरी करने को मजबूर की जाती हैं; विधवाओं की दशा भी कुछ कम दयनीय नहीं हैं। आवश्यक धार्मिक आयतनों का मटिया-मेट किया जाता है, कुटुम्बियों के रोते रहते भी लड्डू उड़ाये जाते हैं, देव-द्रव्य का दुरुपयोग किया जाता है, स्थिति करण अङ्ग को विस्मृत कर अपने ही भाइयों का मन्दिर बन्द करने में ही शान समझी जाती है, जातीय संस्थाओं की बाहिरी-भीतरी रूप-रेखा भी कुछ कम खतरनाक नहीं है। इत्यादि न मालूम कितनी अविवेक पूर्ण और अनावश्यक बातों में मस्त होकर यह जैन समाज अपने कर्त्तव्य को न समझ अपने में फूली नहीं समाती है।

समाज में आज जो संघर्ष चल रहा है और आज की हवा में जो एक तरह का कश-मकश है, वह सब कलिकाल का ही प्रभाव है। इसके प्रभाव से हम अपने दृढ़ बन्धनों को, कुरीतियों के किले को, अन्ध विश्वासों को, सामाजिक होम-रूलों को और इसी तरह अनेक बुरी बुराइयों को दूर कर अपने अतीत आदर्श-वाद को सामाजिक संघर्षों की ओर घसीटना नहीं चाहते। हम शाश्वत विचारों की काट-छांट में लगे रहते हैं। कभी बे सिर-पैर की, बे बुनियाद बातों की और कभी समाजोत्थान के लिये आकाश-

पाताल के कुलावे मिलाने में ही व्यस्त रहते हैं; किन्तु सच पूछिये तो हम भेड़ों की तरह अन्धे होकर चल रहे हैं और सत्पथ प्रदर्शकों की बात मानने में अपनी शान में हानि समझते हैं। इस प्रकार हम थोथा आदर्शवाद लेकर ही अमर और आदर्श बनने के अभिलाषी हैं।

जीवन हमें इसलिये मिला है कि हम हंसते-हंसते और खेलते-खेलते मरना सीखें। जो लोग किसी महान् उद्देश्य को लिये अपने प्राणों को भी हथेली पर रख कर मृत्यु की तलाश करते हैं; वे ही जीते हैं, वे ही मर कर अमर होते हैं और उन्हीं का जीवन सार्थक है। गत-युगों में कुछ महापुरुष इसीलिये जीते चले आये हैं कि वे मरने के लिये निरन्तर बेचैन रहते थे। उन्हें अपने दुःखों की परवाह नहीं थी। अपने आँखों के सामने अन्य जीव-धारियों का कष्ट देख सकना उनके लिये नितान्त असह्य था। उन्होंने बिना किसी सङ्कोच के जनसाधारण के हित के लिये अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया था। किसी ने साम्राज्य से मुख मोड़ा तो किसी ने चक्रवर्ती समान विभूति को पैरों से ठुकराया, किसी ने वन-वन की ख़ाक छानी और न मालूम कितने दुस्सह कष्ट उठाये। उनकी छाया आज तक संसार में अमर है और न मालूम कितने युगों तक रहेगी? ऐसे युग-वीर पुरुषों के समय में समाज हरा-भरा था, समाज की सत्ता का तख़ता उलटने की दम किसी में न थी।

मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह सामाजिक संगठन एवं उसकी उन्नति की चर्चा करे। इसीलिये वह चाहता है कि मेरे वैयक्तिक और कौटुम्बिक जीवन का दायरा बढ़ कर सामाजिक होवे और वह इतने से ही संतोष न कर अपनी शक्तियों का क्रमशः विकाश करता हुआ राष्ट्रीय और विश्व-जीवन के दायरे में आने का प्रयत्न करता है तथा "वसुधैव कुटुम्बकं" इस सार्वजनिक सिद्धान्त का उपासक बन प्राणीमात्र का अपने समान कल्याण करने की

मङ्गलमय कामना करता है। यह कोई कल्पित बात नहीं, किन्तु महाप्रभु महावीर ने भी इसी मार्ग का स्वयमेव अवलम्बन किया था।

जिस समय मुझे उसी महाप्रभु–महावीर की अनुयायिनी जैन समाज का ख्याल आता है, तब इसके अन्तर्गत अनेकों कुरीतियों, अन्धविश्वासों और अविवेक पूर्ण कार्यों का स्मरण हो आता है। सामाजिक तथा धार्मिक रूढ़ियों का जैसा नग्न-नृत्य जैनियों में मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं। जैनियों में रूढ़ियाँ मच्छरों की तरह पैदा होती हैं। अन्य समाजों में जिस प्रथा को रूढ़ि बनने में सदियाँ लगती हैं, वहाँ जैनियों में वर्ष दो वर्ष में ही वह रूढ़ि रूप में परिवर्तित हो जाती है और फिर उसे उखाड़ना टेढ़ी खीर हो जाता है।

वास्तविक शिक्षा के अभाव से समाज के अधिकांश व्यक्ति सामाजिक और धार्मिक गुलामी की जञ्जीरों में इस तरह जकड़ गये हैं कि उनसे मुक्ति पाना मुश्किल ही नहीं वरन् ग़ैर मुमकिन-सा हो गया है। जैन जनता कट्टर सनातन जैन धर्म की अनुयायिनी है, पर इसका वीरोपदिष्ट सत्य जैनधर्म तंग रूढ़ियों के घेरे में चक्कर लगा रहा है। इसने अन्ध विश्वासों को ही जैनधर्म समझ रक्खा है और सामाजिक शरीर को रौढ़िक जैसी जटिल शृंखलाओं से जकड़ दिया है इसीलिये इसका आन्तरिक विकाश सर्वथा ही रुक गया है। इसमें जो-जो आन्तरिक कारण हैं उन्हीं का दिग्दर्शन कराने का इस पुस्तक में प्रयत्न किया गया है, इससे जैन-समाज की सभी भीतरी-बाहिरी बातों का अवलोकन कर आपका हृदय विदीर्ण हुए बिना न रहेगा; ऐसा मेरा अटल विश्वास है। अपने आप लिखना उचित नहीं। अपने में नव-जीवन के सञ्चार की इच्छुक जनता इस पुस्तक की आवश्यकता और महत्त्व पर स्वयं सन्तुष्ट होगी तथा अपनी सहृदयता प्रकट करेगी। ऐसी हालत में ही मेरा यह प्रयास सफल होगा।

अनन्त चतुर्दशी
वीर नि० सं० २४६२

विनीत—
विद्यारत्न "कुमुद"

विषयानु-क्रमणिका ।

* वन्दे वीरम् जगद् गुरुम् *

जैन-समाज-दर्पण

बन्दना

ज्ञान-बुद्धि-विवेक के जो प्राथमिक आधार हैं।
लोक हितकर आत्म-रत आनन्द के भण्डार हैं॥
है महा मङ्गल मयी जिनकी विमल अभिव्यञ्जना।
प्रथम उन जैनेन्द्र को श्रद्धा सहित है बन्दना॥ १॥

धर्म

धर्म ही उत्कृष्ट मंगल है सतत संसार में।
धर्म ही अवलम्ब है भव-सिन्धु पारावार में ॥
धर्म ही से विश्व का होता रहा उपकार है।
धर्म महिमा हो सके वर्णित न अपरम्पार है ॥ १ ॥

खुल रहा जिसका कि प्राणीमात्र के हित द्वार है।
पाल सकने का जिसे संसार को अधिकार है ॥
अग्रसर जो मोक्ष-पथ की ओर करता है सदा।
पाठ प्रेम-दया-अहिंसा का पढ़ाता सर्वदा ॥ २ ॥

चिन्ह जिसमें पक्षपात विकार का मिलता नहीं।
भ्रान्ति भौतिकवाद का जिसमें विधान नहीं कहीं ॥
पतित को पावन बनाने की भरी हैं शक्तियाँ।
विश्व को ऊंचा उठाने की खरी हैं युक्तियाँ ॥ ३ ॥

आत्म-उन्नति का भरा जिसमें समुन्नत मर्म है।
सत्य ही वह विश्व शान्ति मयी अनूपम धर्म है ॥
धर्म मय नित बुद्धि हो यह कामना करते रहें।
धर्म-निधि धर्माचरण द्वारा सदा भरते रहें ॥ ४ ॥

किन्तु अब यह सत्य है पाखण्ड मल में हम सने।
धर्म के शुभ नाम पर हम ढोंग के पूजक बनें ॥
बन गया वह स्वार्थियों का ढोंगियों का घोसला।
विश्व उद्धारक बना हा ! सर्वनाश ढकोसला ॥ ५ ॥

लुप्त असली वस्तु को झूठी क्रियाओं से किया।
हीरकों के नाम पर पाषाण को अपना लिया ॥
नाश होना शीघ्र इस पाखण्ड का अनिवार्य है।
किन्तु न्यायोचित न उसमें धर्म ध्वंसक कार्य है ॥ ६ ॥

मानवात्मा का जगत में धर्म वह वरदान है।
आत्म को देता अहर्निशि जो कि जीवन प्राण है ॥
हम बिना उस प्राण के जीवित न रह सकते सभी।
सिद्ध को भी सिद्ध सिद्धि बिना न कह सकते कभी ॥ ७ ॥

आत्म अथवा वस्तु का धर्म-स्वभाव प्रसिद्ध है।
वह जगत के सर्व तत्त्वों में स्वतः ही विद्ध है ॥
जब हृदयमें और हम थोड़ा उतर कर आयँगे।
तो स्वभाव इसका वहाँ दर्शन समर्थन पायँगे ॥ ८ ॥

भारतवर्ष

भव्य भारतवर्ष की महिमा कहो हम क्या कहें ?
तीव्र-कल्लोलित जलधि में स्थिर भला कैसे रहें ?
तत्त्व और महत्त्व जिसके ज्ञान गरिमा बो रहे।
पथ प्रदर्शक विश्व में सिद्धान्त जिसके हो रहे ? ॥ १ ॥

नीति में चातुर्य्य में परिपूर्ण ऐसा सृष्टि में।
देश क्या कोई कहो आता कहीं है दृष्टि में ?

हैं अनेक विशेषताओं की जहाँ पर घन-घटा ?
देखती बनती मनोहर दिव्य तेजोमय छटा ? ॥ २ ॥
है अप्राप्त अलभ्य दुर्लभ वस्तुओं द्वारा भरा ?
सस्य-श्यामल रत्न-सू है भूमि जिसकी उर्व्वरा ?
पूर्ण वर्णित हो न जिसकी ललित कल-कमनीयता ?
दृष्टि गत होती जहाँ सर्वत्र ही रमणीयता ? ॥ ३ ॥
हो रही शोभित अनेकों शैल मालाएँ जहाँ ?
बह रही हैं शुद्ध सरिताएँ अनेक जहाँ तहाँ ?
विश्व में उपमा रहित कल-कल निनादों से भरी ?
बह रही निर्मल पतित-पावन जहाँ पर सुर-सरी ॥ ४ ॥
छत्र जिसके शीश पर उन्नत हिमाञ्चल धारता ?
अमृत मय जल-निधि गहन दिन रात पाँव पखारता ?
पुष्प हो नत शिर चढ़ाते नित्य श्रद्धाञ्जलि अहा ?
दीखता सुरभित जहाँ पर नित्य मलयानिल वहा ? ॥ ५ ॥
झर रहे झरने जहाँ अविरल-अश्रान्त अनेक ही ?
कर रहे मानो कि भारतवर्ष का अभिषेक ही ?
वायु प्रातः काल बह कर शान्ति हर जाता कभी ?
और इठला कर हृदय की श्रान्त हर जाता कभी ॥ ६ ॥
सर्वथा स्वर्गीय यह रमणीय दृश्य भरा पुरा ?
सत्य ही सहसा हृदय लेता नहीं किसका चुरा ?
हों सहज ही प्राप्त ऐसी प्राकृतिक निधियाँ जहाँ ?
क्यों न हो विज्ञान से परिपूर्ण जन कृतियाँ वहाँ ? ॥ ७ ॥

शील संयम के जहाँ उत्कृष्ट शास्त्र विधान हों ?
क्यों न नर-नारी वहाँ आदर्श ज्ञान निधान हों ?
क्या हुई हैं नारियाँ शील-व्रती ऐसी कहीं ?
नित्य ही जैसी यहाँ पर जन्म हैं लेती रहीं ? ॥ ८ ॥

कौन सीता आदि सतियों के महत्त्व न जानता ?
श्रेष्ठता उनकी जगत में कौन जो कि न मानता ?
वीर भारत के प्रतापी और मिलते हैं कहाँ ?
चन्द्रगुप्त-अशोक से नर रत्न जन्मे हैं यहाँ ॥ ९ ॥

यदपि उनके शेष अब भग्नावशेष यहाँ बचे।
नाम पर उनके प्रपंच न जा चुके कितने रचे ?
शासकों द्वारा सकल वैभव कला आदिक छिने।
किन्तु शेष बचे हुए अब भी न जा सकते गिने ॥ १० ॥

स्वर्ग से भी श्रेष्ठ ऐसी जन्म धात्रि मही सदा।
पूज्यनीया नित्य मंगल मय हमें हो सर्वदा ॥
इस विषय को छोड़ते हैं पाठकों ! बस अब यहीं।
क्योंकि भय है हो न जाये व्यर्थ विषयान्तर कहीं ॥ ११ ॥

पर हमारी दृष्टि में अब कुछ न इसका मान है।
सत्य की अब सत्य ही हमको न कुछ पहिचान है ॥
संकटों का यह भले ही केन्द्र बन जाया करे।
पर न इसकी मुक्ति का हा ! ध्यान तक आया करे ॥ १२ ॥

राष्ट्रीयता

आज हम जिस राष्ट्र में पल कर फले फूले बढ़े।
दूसरों की दृष्टि में उन्नत शिखाओं पर चढ़े ॥
आज उस पर संकटों का यदि हुआ आह्वान है।
तो उचित उस पर हमारे प्राण का बलिदान है ॥ १ ॥

राष्ट्र का सम्मान ही अपना परम सम्मान है।
राष्ट्र के अपमान में अपना महा अपमान है ॥
राष्ट्र के हित में हमारी हो जुड़ी आत्मीयता।
राष्ट्र श्रद्धा है यही-ये ही विमल राष्ट्रीयता ॥ २ ॥

इस दिशा में किन्तु अपने जैन अति कंगाल है।
मानिये राष्ट्रीयता इनके लिये जंजाल है ॥
आज यह लख कर दशा कोई भला कैसे कहे।
इस दिशा में जैन पूर्वज विश्व से उन्नत रहे ॥ ३ ॥

आज इसका राष्ट्र उन्नति में न कोई हाथ है।
पर विमुखता का महान कलंक इसके साथ है ॥
आज दमड़ी के हमें जग चार-चार न पूछता।
शुष्कता में पल्लवित होती कहीं आशा-लता ? ॥ ४ ॥

हों यदपि दो-चार तो उनकी कहीं गणना नहीं।
ओस-बिन्दु बताइये तृष्णा बुझा सकते कहीं ?
शर्म से वह जैन तक निज को नहीं लिखते कभी।
घोर निद्रा से भला जगते नहीं हम क्यों अभी ? ॥ ५ ॥

यदपि जीना है हमें तो जाग जाना चाहिये।
क्षेत्र में राष्ट्रीयता के शीघ्र आना चाहिये॥
शक्ति राष्ट्रोत्थान में अपनी लगाना चाहिये।
जैन उन्नति केतु को फिर से उड़ाना चाहिये॥ ६॥

राजनीति

राजनीति समाज का सबसे व्यवस्थित अङ्ग है।
सर्वथा इसके बिना जीवन अपूर्ण अपङ्ग है॥
यह जगत के चित्र में अनुपम कला मय रङ्ग है।
आज यह संसार का सब से महान् प्रसङ्ग है॥ १॥
राजनैतिक विज्ञ अपनी जाति में मिलते नहीं।
इसलिये अधिकार पुष्प यहाँ कभी खिलते नहीं॥
देश की "धारा-सभाओं" में न निज सम्मान है।
किन्तु होता जैन पन के नाम पर अपमान है॥ २॥
कौंसिलों में आज हमको राज्य अपनाता नहीं।
जैनियों का एक भी प्रतिनिधि चुना जाता नहीं॥
इस समय दो एक जो "धारा-सभा" में हैं अभी।
जैनियों के नाम पर वे भी चुने न गये कभी॥ ३॥
जैन हित के हेतु इन पर दृष्टि मत दौड़ाइये।
जैन आन्दोलन किया हो यदि कभी बतलाइये ?
बात यह जब जैनियों के नाम पर न वहाँ गये।
मोल लें बैठे बिठाये क्यों भला झंझट नये॥ ४॥

राजनीति यदपि तनिक भी आज हम कुछ जानते ।
और उसका समय पर उपयोग भी पहचानते ॥
तो हमारी जाति में भी आज बल होता बड़ा ।
यह पतन प्रतिक्षण न हमको दीखता सम्मुख खड़ा ॥ ५ ॥
आज जो हम पर निरन्तर आक्रमण होते नये ।
पूर्वजों के काल में होते न जो देखे गये ॥
निज हितों का रात-दिन सर्वत्र ही अवसान है ।
नित्य पग-पग पर इसी से हो रहा अपमान है ॥ ६ ॥
राजनैतिक क्षेत्र में नीतिज्ञ बुद्धि प्रधान है ।
किन्तु अब तो जैन-जग इसमें महा अज्ञान है ॥
दूसरों की क्या कहें घर का प्रबन्ध न जानते ।
मानिये अभिमान ये विच्छिन्नता में मानते ॥ ७ ॥
चन्द्रगुप्त–अशोककी–शासन समुन्नत की कला ।
ऐतिहासिक कौन विज्ञ न जानता उनको भला ?
इस दशा में किन्तु अब भी जैन-जाति उदास है ।
सत्य ही यह सब हमारा राजनैतिक ह्रास है ॥ ८ ॥

साम्राज्यवाद

इस जैन जाति पर गोलों की कितनी भारी बौछारों से ?
कितने अत्याचारों–तीरों–तलवारों के हा ! वारों से ?
आहों के कितने मेघों से कितने शोणित की धारों से ?
कितनी अबला-विधवाओं के हा ! खारे पारावारों से ?

नर के कितने कंकालों से,
साम्राज्य शब्द निर्माण हुआ ?
ओ ! मानव के इतिहास बता,
इससे कितना निर्वाण हुआ ?
हा ! क्रोध-स्वार्थ-निर्दयता के कितने झूठे अरमानों से ?
कितने छल से बल से विष से कितने भय से अभिमानों से ?
कितने दुष्टों की लिप्सा से कितने वीरों के बलिदानों से ?
कितने नरकों की ज्वाला से कितने पापों की खानों से ?
कितने भूखों के शोषण से,
साम्राज्यवाद का त्राण हुआ ?
ओ ! मानव के इतिहास बता,
इससे कितना निर्वाण हुआ ?

साहित्य

जैन नय साहित्य यह जितना विशद प्राचीन है।
आज उसके सामने उपमा जगत की हीन है॥
यह उदित साहित्य के इतिहास में विख्यात है।
आज इसके जोड़ की कृतियाँ असम्भव बात है॥ १॥
पूर्व प्राकृत जोकि भाषा मध्य सर्व प्रधान है।
मानिये इसकी हमारे ही यहाँ पर खान है॥
संस्कृत साहित्य में अनमोल जो हीरे भरे।
लेखनी में बल कहाँ जो पूर्णतः वर्णन करे॥ २॥

न्याय-नय-दर्शन-गणित-भूगोल या कौशल-कला ।
व्याकरण-सिद्धान्त-ज्योतिष क्या नहीं इसमें भला ॥
योग-बल काव्यादि के सिद्धान्त ग्रन्थ अपार है ।
विश्व के साहित्य की मानो यहाँ भर मार है ॥ ३ ॥
यह अपूर्व-अलभ्य-ध्रुव साहित्य ढ़ेर पड़ा-पड़ा ।
ठीक है अधिकांश वह अलमारियों में ही सड़ा ॥
किन्तु आज बचा-खुचा जो भी अभी तक शेष है ।
सिर्फ उसकी भी नहीं समता जगत में लेश है ॥ ४ ॥
कुन्द-कुन्दाचार्य मानो न्याय के अवतार है ।
रत्न उनके प्रिय कमल मार्तण्ड अपरम्पार है ॥
इस गहन साहित्य के मानों हमीं सिरमौर है ।
बोलिये इस जोड़ का क्या ग्रन्थ जग में और है ॥ ५ ॥
आप उस पर नित्य टीकाऐं रचाते जाइये ।
पूर्णतः पाण्डित्य बल इसमें लगाते जाइये ॥
किन्तु आप कहे बिना यह बात रह सकते नहीं ।
पार इसका हम भला अल्पज्ञ पा सकते कहीं ॥ ६ ॥
नेमिचन्द्र—समन्तभद्राचार्य भी अकलङ्क हैं ।
यह सभी दर्शन जगतके अद्वितीय मयङ्क हैं ॥
प्राप्त इनकी ध्रौव्य कृतियोंके सफल जो अङ्क हैं ।
सर्वथा उनके समक्ष समस्त दर्शन रङ्क हैं ॥ ७ ॥
राजवार्तिक-कर्मकाण्ड तथापि गोमटसार है ।
सप्तभङ्ग तरङ्गिणी सर्वार्थ-सिद्धि अपार है ॥

विश्व-दर्शन आज इसके सर्वथा आधीन है।
विज्ञ कोई श्रेष्ठ दर्शन में न सम कालीन है॥ ८॥
अब उमा स्वामी रचित तत्त्वार्थ सूत्र निहारिये।
और फिर उसकी विशद व्याख्या नितान्त विचारिये॥
तत्त्व चर्चा का उन्होंने अन्त मानों कर दिया।
ठीक यह उपमा कि गागर मध्य सागर भर दिया॥ ६॥
सम्र तत्व-ज्ञान में यदि आप कुछ व्युत्पन्न हैं?
और कुछ गम्भीर शङ्काएँ हुईं उत्पन्न हैं?
तो चुनौती आपको है प्रश्न वह ले आइये।
सर्व प्रश्नों का अभी सम्पूर्ण उत्तर पाइये॥ १०॥
अब जरा "भूगोल" के गुरु तर विषय को लीजिये।
सर्व नन्दि रचित अनूपम ग्रन्थ चिन्तन कीजिये॥
इस विषय में ग्रन्थ उनका एक लोक-विभाग है।
हो रहा व्याख्या सहित इसमें जगत का भाग है॥ ११॥
मन्त्र विद्या का न कम अपने यहाँ साहित्य है।
इस विषय के मल्लिषेणाचार्यजी आदित्य है॥
अन्य ग्रन्थों में प्रमुख विद्यानुशासन रत्न हैं।
यह क्रियात्मक रूप में साफल्य पूर्ण प्रयत्न हैं॥ १२॥
यह विषय संक्षेप में दो चार जो हमने कहे।
किन्तु जिन साहित्य में अवशेष अब जितने रहे॥
अर्थ युक्त प्रथक-प्रथक वर्णन यदपि उनका करें।
तो न जाने इस तरह की पोथियाँ कितनी भरें॥ १३॥

किन्तु मानों एक दम ही आज वह बदली दिशा ।
हाय ! पूर्ण प्रकाश पर यह आ गई काली निशा ॥
आज वह साहित्य की अट्टालिका ढ़हने लगी ।
सुर-सरी गति भूल कर विपरीत में बहने लगी ॥ १४ ॥
इस समय जो रेढ इस साहित्य की नित लग रही ।
लेखनी द्वारा कदाचित वह न जा सकती कही ॥
वह सरस-साहित्य उपवन पूर्ण लहराता हुआ ।
दीखता है आज उसको सांड दल खाता हुआ ॥ १५ ॥
स्वार्थ-साधन कर बना सम्पूर्ण यह अब आड़ है ।
कलयुगी आचार्यों का यह बना खिल वाड़ है ॥
पूर्वजों का नाम देकर आज अपने ग्रन्थ में ।
कर रहे प्रेरित हमें यह नित्य गोवर पन्थ में ॥ १६ ॥
पेट की चर्चा भला जितनी कि भाती है इन्हें ।
क्यों न इतनी नर्क की चिन्ता डराती है इन्हें ?
बाह्य-चक्षु व ज्ञान-चक्षु बलात् दोनों ही मिचे ।
और हम सब व्यर्थ इनके बीच में आकर पिचे ॥ १७ ॥
र्श्वजों ने सींच जो साहित्य वट लहरित किया ।
किन्तु उनको श्याम-कृतियों से गलित-विगलित किया ॥
तुम कहाँ हो पूज्यवर आचार्य सत्वर आइये ।
और अपनी सादरा सन्तान से फल पाइये ॥ १८ ॥

कला-कौशल

विगत में कितनी हमारी श्रेष्ठ थी कौशल-कला ।
आज उनकी पूर्ण उपमा कौन दे सकता भला ॥
आइये अपना अमूल्य समय हमें कुछ दीजिये ।
दर्श फिर प्राचीन निज गौरव कला का कीजिये ॥ १ ॥

देखिये यह क्षेत्र अपना देवगढ़ रमणीक है ।
शिल्प कौशल की पड़ी मानों यहाँ ध्रुव लीक है ॥
यह हुआ है नष्ट फिर भी दृश्य सब अभिराम है ।
भस्म हीरक तो सदा पाता अधिक ही दाम है ॥ २ ॥

वर्ष यदि अब तक बनें इसको हजारों हो गये ।
किन्तु फिर भी लग रहे कौशल्य कल जैसे नये ॥
देखिये इसमें मनोहर स्थम्भ चारों ओर से ।
नृत्य मानों कर रहे हैं जंगलों में मोर से ॥ ३ ॥

खुद रहे सर्वत्र इसमें चारु-चित्र सुहावने ।
और वह ऊपर नुकीले नव कंगूरे से बने ॥
ध्यान पूर्वक देखिये बारीक इनकी जालियाँ ।
हँस रहा है ह्रास अब इन पर बजा कर तालियाँ ॥ ४ ॥

जालियों के छिद्र बिन्दु निहारिये अन्यत्र से ।
झिलमिलाते लग रहे आकाश में नक्षत्र से ॥
आप जितनी भी अधिक गम्भीर दृष्टि गड़ायँगे ।
एक से बढ़ एक नव आश्चर्य पाते जायँगे ॥ ५ ॥

ढंग-भावुकता-प्रणाली-मञ्जु-मौलिकला नई।
नव्य-शिल्पादर्श-सैद्धान्तिक-अलौकिकता नई॥
कल्पना वैचित्र्य अन्तर झूम लेने योग्य हैं।
हाथ शिल्प विशारदों के चूम लेने योग्य हैं॥ ६॥
पुष्प-पंखड़ियाँ-लता सब की अलग पहिचान है।
बुद्धि इस कौशल-कला को देख कर हैरान है॥
देखिये यह अधखिली कलिका-कली यह बन्द है।
देखिये यह खिलगई इसमें भरा मकरन्द है॥ ७॥
वाचको! यह सहस कूट सुरम्य चैत्य निहारिये।
और फिर कौतुक भरा निर्माण क्षेत्र विचारिये॥
भिन्न-भिन्न हजार प्रतिमायें महा महिमा मई।
आज भी तो लग रहीं अभिराम कल जैसी नई॥ ८॥
पार्श्व में सर्वत्र यह जैनेन्द्र प्रतिमा खुद रहीं।
शिल्प विद्या देख यह आनंद† किसे होगा नहीं॥
उस समय पाषाण में जैसी विचित्र कला भरी।
काठ में अब हो न सकती वह सुघड़ कारीगरी॥ ९॥
किन्तु इस कौशल-कला पर अब न हमको ध्यान है।
भूल बैठे आज सब छाया महा अज्ञान है॥
भेद तक भूले कि क्या उत्थान? क्या अपमान है?
चेतिये उन्नति नहीं यह गर्त का सोपान है॥१०॥*

---

†उत्सव। *कविवर कल्याणकुमारजी जैन "शशि", रचित—"देवगढ़-काव्य" से।

लेखनी

हे लेखनी निर्भीक लिख दे क़ौम की असली दशा।
प्रत्येक मानव रूढ़ियों के जाल में कैसा फँसा ?
करनी पड़ेगी बन्धु-कृत्यों की तुझे आलोचना।
प्रियवर ! हमारे क्या कहेंगे यह न मन में सोचना ॥ १ ॥
प्रिय सत्य लिखने में तुझे परमेश पति का भय नहीं।
ध्रुव सत्य से डर कर कभी होती जगत में जय नहीं ॥
लज्जा-विवश यदि दोष हम कहते नहीं तो भूल है।
भीषण तनिक सी भूल वह सर्वत्र अवनति-मूल है ॥ २ ॥
जब तक न दोषों की कड़ी आलोचना की जायगी।
तब तक न यह नर-जाति अपना पथ-प्रदर्शक पायगी ॥
कर्त्तव्यवश करना पड़े जो कार्य इस संसार में।
वह कार्य कर आधार प्रभु कर्त्तव्य पारावार में ॥ ३ ॥

प्रवेश

अतिशय समुन्नत थे कभी हम इस जगत के बीच में।
अब तो फँसे हैं लोभ-ईर्षा-दम्भता की कीच में ॥
जाता रहा सब ज्ञान अब तो छा गई अज्ञानता।
गृह युद्ध कैसा हो रहा क्या आपको कुछ है पता ? ॥ १ ॥
हा ! स्वार्थ ने मानस सरोवर अज्ञता से भर दिया।
अधिकांश में उसने हमारे सद्गुणों को हर लिया ॥

निज बन्धुओं से भी अहो अब तो घृणा करने लगे।
शुभ कार्य करते हुए हा! आज हम डरने लगे॥ २॥
हम एक थे पर अब यहाँ सर्वत्र तेरह तीन हैं।
निःस्वार्थ पर उपकार की शुभ-भावना से दीन हैं॥
है क्या ठिकाना भिन्नता का गेह भी न्यारा किया।
आपद् ग्रसित निज बन्धुओं का भी न निस्तारा किया॥ ३॥
हा! उत्तरोत्तर भिन्नता प्रतिदिन यहाँ अब बढ़ रही।
इस भव्य जैन समाज पर संकट-लता नित चढ़ रही॥
हा! बट रहे हम तो सहज ही भिन्न-भिन्न विभाग में।
क्यों दैव ने यह लिख दिये दुर्दिन हमारे भाग में॥ ४॥
प्रतिभा गई वैभव लुटा विद्या गई अज्ञान में।
हा! रूढ़ियों के दास बन बैठे वृथा अभिमान में॥
चाहे मरे कोई कभी सबको पड़ी निज स्वार्थ की।
हा! हो गई हमसे पृथक अब बात सब परमार्थ की॥ ५॥
हम आज कोई काम के भी योग्य इस जग में नहीं।
स्वयमेव रक्षा कर सकें इतना सुबल तन में नहीं॥
जब बढ़ रहे सब लोग जग में तब हमारा ह्रास है।
हमको न अपने बन्धुओं का ही रहा विश्वास है॥ ६॥
मृदुता, सरलता, सत्यता, मैत्री, सुशान्ति थी जहाँ।
देखो कुटिलता, नीचता, भीषण अशान्ति है वहाँ॥
जिस मार्ग पर पहले चले थे हम न अब उस पर चलें।
चरितार्थ तब कहवत हुई हम मूर्ख नर से पशु भले॥ ७॥

जिनवाणी की दशा

(१)

कहा जाता हा! कुछ भी नहीं,
वीर-वाणी का यह अपमान।
मन्दिरों के तम में एकान्त,
पड़ी है होकर दुखित म्लान॥

(२)

दीमकों की उस पर भर मार,
विकृत तन काट-काट कर किया।
क्षीण-जर्जर-अस्तित्त्व विहीन,
नाश मय परिवर्तन कर दिया॥

(३)

लुप्त हो गया इसी से ज्ञान,
शारदा का है यह अभिशाप।
पुण्य मय पथ विस्मृत हो रहा,
निरन्तर बढ़ता जाता पाप॥

(४)

किन्तु इतने पर भी हम आज,
नहीं चेते हैं किञ्चित हाय।
ईश ये क्यों हैं हमें अभीष्ट,
अन्त जीवन ऐसा निरुपाय॥

जैन-धर्म की प्राचीनता

इस धर्म की प्राचीनता के चिह्न मिलते जा रहे।
उपलब्ध मथुरा-स्तूप और उदय-गिरी* बतला रहे॥
प्राचीनता इसकी जगत भर कर रहा स्वीकार है।
इस धर्म का ही इस दिशा में गत ऋणी संसार है॥ १॥
हाँ, जब न पृथ्वी पर कहीं भी बौद्ध-वैदिक धर्म थे।
कल्याण प्रद सर्वत्र तब इस धर्म के शुभ कर्म थे॥
जितने पुराने जैन-मन्दिर आज मिलते हैं यहाँ।
उतने पुराने बोलिये अन्यत्र मिलते हैं कहाँ? ॥ २॥
था राष्ट्र-धर्म कभी यही सिद्धांत अति अभिराम थे।
बलवान थे, वरदान थे, गुणधाम थे, शिवधाम थे॥
इस धर्म का ही मुख्यतः ध्रुव केन्द्र भारतवर्ष था।
यह ज्ञान में विज्ञान में सब में प्रथम उत्कर्ष था॥ ३॥
चमका न धर्मादित्य केवल सर्व हिन्दुस्तान में।
फैली प्रभा दूरस्थ इसकी एशिया† यूनानमें॥

---

* ग्वालियर स्टेट के अन्तर्गत भेलसा स्टेशन से ५ मील दूरी पर खण्डगिरी उदयगिरी क्षेत्र पर २५०० वर्ष पूर्व का महाराज खारवेल के समय का प्राचीन शिलालेख है। उदयगिरी श्री संभवनाथ स्वामी की जन्मभूमि है।

† जिस समय बौद्ध और हिन्दुओं में साम्प्रदायिक झगड़े हो रहे थे, उस समय बौद्ध और जैन मत के लोग भारतवर्ष से भागकर यूनान, कार्थेज, फिनोशिया, रोम और मिश्र आदि देश में

कार्थेज-अफरीका† तथा मिश्रादि रोम फिनीशिया।
जाकर वहाँ तक भी सदैव निवास जैनों ने किया॥ ४॥
जगके पुरातन वेद भी अस्तित्त्व इसका मानते।
इतिहास वेत्ता धर्म की प्राचीनतता को जानते॥
जो बौद्ध-मत से जैनियों की मानते उत्पत्ति को।
निष्पक्ष हो देखे तनिक इतिहास की सम्पत्ति को॥ ५॥

पहुँच कर आबाद हुए थे; तथा वहाँ पहुँच कर अपना-अपना झंडा गाड़ा था।

† जैनधर्म अफरीका में भी फैला हुआ था। इसके लिये "हिन्दुस्तान कदीम" नाम की पुस्तक साक्षी है। इसके पृष्ठ ४२ पर इस प्रकार लिखा है—

"जिस प्रकार यूनान में हमने साबित किया कि हिन्दुस्तान के 'हम नाम' शहर और पर्वत विद्यमान हैं उसी प्रकार मिश्र देश में भी जाने वाले भाई अपने प्यारे वतन को नहीं भूले। उन्होंने वहाँ एक वर्तमान Meru (सुमेरु) रक्खा। दूसरे पर्वत का नाम Cailas (कैलाश) रक्खा। एक सूबा "गुरना" है, जिसमें मन्दिर और मूर्तियाँ गिरनार पर्वत जैसी आज तक मिलती हैं; जो अवश्य वहाँ के (जैनी) लोगों ने बसाया होगा। इत्यादि।"

"दिगम्बर-जैन" वीर संवत् २४५२ अङ्क ४ से"

यूनान के अथेन्स नगर में आज भी एक जैन श्रमण की समाधि जैनधर्म के प्रभाव को प्रकट कर रही है। सीलोन से लेकर लंका तक भी भगवान् महावीर का पवित्र जैन-धर्म प्रचलित हुआ था। यह बात स्वयं बौद्ध ग्रन्थों से प्रकट है। वहाँ के प्रसिद्ध नगर "अनरुद्धपुर" में एक निर्ग्रन्थ श्रमणों का मन्दिर बतलाया गया है।

हम और हमारे पूर्वज

जैसे हमारे पूज्य थे उनकी न हम में गन्ध है।
रहते हुए सम्बन्ध भी उनसे न अब सम्बन्ध है॥
वे कौन थे, क्या कर ? गये इसको भुलाया सर्वथा।
आडम्बरों ने आज तो हम को लुभाया सर्वथा॥ १॥

उनकी कथाओं पर कभी विश्वास भी आता नहीं।
उनका सुखद वह नाम भी अब कान को भाता नहीं॥
उनके अलौकिक कार्य को हम आज मिथ्या मानते।
अपने हिताहित को तनिक भी हम नहीं पहिचानते॥२॥

पूर्वज प्रबल रणवीर थे तो आज हम गृह-वीर हैं।
वे क्षीर थे विख्यात तो हम आज खारे नीर हैं॥
जीवन बिताते थे सकल अपना परम पुरुषार्थ में।
हम भी बिताते आज जीवन को यहाँ पर-स्वार्थ में॥३॥

वे चाहते थे लोकमें सब का सतत उपकार हो।
हम चाहते हैं एक-दम सब का महा संहार हो॥
उनके सदा इच्छा रही नित दूसरे उन्नत बने।
लिप्सा हमारी है यही नित दूसरे अवनत बने॥ ४॥

जैनियों में एक 'कनक' मुनि सन् ई० से २०६६ वर्ष पहिले हो गये हैं, उनका शिखरबन्द सुन्दर मन्दिर डाक्टर 'फुहार' ने नैपाल के हिमालय की तट की ओर "निजलिवा" ग्राम में देखा है।

—दि० जैन से

वे थे जगत के रत्न अनुपम हम न पद की धूल हैं।
वे फूल थे मकरन्द-युत पर हम न किंशुक फूल हैं ॥
त्रैलोक्य के वे चन्द्रमा थे पर न हम नक्षत्र हैं।
पूर्वज हमारे प्रेम से पुजते रहे सर्वत्र हैं ॥ ५ ॥

संख्या ह्रास

हा ! धर्म से धन से तथा जन से हमारा ह्रास है।
अवलोक यह अवनति दशा होता हृदय को त्रास है ॥
जब हम न होंगे लोक में तब धर्म भी होगा नहीं।
आधार बिन आधेय भी पल भर न रह सकता कहीं ॥१॥
इस ह्रास पर भी क्या कभी जाता हमारा ध्यान है।
जन नाश ही सब के लिये अतिशय भयंकर वाण है ॥
इक्कीस प्रतिदिन घट रहे अविश्रान्त जैनी जन यहाँ।
क्यों चल रही है काल की हम पर कठिन छैनी यहाँ ॥२॥
थे एक दिन संसार में सर्वत्र ही विजयी हमी।
पर आज तो सब से अधिक होती हमारी ही कमी ॥
सम्राट् अकबर के समय हम एक कोटि रहे यहाँ।
वे धर्म-बन्धु शनैः-शनैः कहिये कि आज गये कहाँ ? ॥३॥
हा ! देख कर नित यह घटी बहता दृगों से नीर है।
जिस हृदय में हो व्यथा होती उसी को पीर है ॥
अस्तित्व क्या उठ जायगा अब सोच होता है यही।
तो क्या हमारा भी रहेगा शेष अब इतिहास ही ॥४॥

भूगर्भ में स्थित मूर्तियाँ अस्तित्त्व फिर बतलायेंगी।
था जैन धर्म कभी यहाँ फिर यह वही प्रगटायेंगीं ॥
होंगे हमारे देव-मन्दिर दूसरों के हाथ में।
हे! हे!! प्रभो यह क्या हमारे लिख रहा हत माथ में ॥ ५ ॥

हमारा ह्रास

कभी संख्या थी कई करोड़,
आज रह गये किन्तु कुछ लाख।
दशा अपनी पर तनिक न ध्यान,
खोल कर दिया अभी तक आँख ॥ १ ॥
ह्रास होता जाता है सतत,
कौन-सा घुन हममें हो गया।
कभी सोचा न बैठ कर आह!
हमारा क्या था क्या खो गया ॥ २ ॥
कष्ट यह कौन करे तो कहो,
सभी हैं अपनी धुन में मस्त।
सदा तू-तू मैं-मैं कर और,
जाति को आज कर रहे व्यस्त ॥ ३ ॥
अगर ऐसा ही होता रहा,
एक दिन हो जायेंगे शेष।
कहीं होगा न नाम का नाम,
नहीं स्मारक भी अवशेष ॥ ४ ॥

समय अब भी है यदि कुछ यत्न,
किया जायगा तो है आश।
ह्रास होगा तक भी फिर नहीं,
मार्ग उन्नति पा दिव्य-प्रकाश ॥ ५ ॥

समाज

पावन अहिंसा धर्म पर स्थित धरम की भीत है।
करना दया जी मात्र पर यह जैन धर्म पुनीत है ॥
निज की दशा उल्लेख में यह लेखनी बन कर्कशा।
कैसे लिखे निज की घृणा-मय दुःखप्रद हा! दुर्दशा ॥ १ ॥
जैसा अहिंसा धर्म निज वक्तव्य में रहता यहाँ।
वैसा अहिंसा धर्म हा! कर्त्तव्य में रहता कहाँ?
जल छानने में बस समझ रक्खा अहिंसा धर्म है ॥
करते कुठाराघात नर पर हाय! कैसा कर्म है ॥ २ ॥
श्रीमान होकर हम अविद्या अन्धता के दास हैं।
परमार्थ से अति दूर होकर स्वार्थता के पास हैं।
नित पूजते हैं पीर-पैगम्बर कुगुरु हित जान के।
श्रद्धा हटी निज धर्म से मिथ्यात्व-मग को मान के ॥ ३ ॥
उपहास मस्तक का हुआ जिससे न समझें तत्त्व को।
हट ग्राहिता धारण करें छोड़ा धवल सम्यक्त्व को ॥
होकर कलंकी धर्म को हमने कलंकित कर दिया।
आदर्श अनुपम में सदा को पाप अंकित कर दिया ॥ ४ ॥

हम-सी अधम संतान से सद्धर्म-दीपक बुझ चला।
श्रावक न होते और कुछ होते तभी होता भला ॥
हत रूढ़ियों को धर्म का रूपक बनाया आज है।
फंस कर उसी में जाति भी अब हो रही मुहताज है॥ ५ ॥
हा ! न्याय-नीति-नियम नशा कर घोर हट धर्मी बने।
परिणत किया जिन धर्म को संताप शापों में सने ॥
सुनते न क्यों कहते यदपि उत्थान की नित वार्ता।
भावी समुन्नति के लिये मन में न नेक उदारता ॥ ६ ॥
सोये बहुत हे बन्धुओ ! अब शीघ्र ही जागो उठो।
अज्ञान-निद्रा मोह-कल्मष द्वेष को त्यागो उठो ॥
इससे अधिक कुछ और मुझको आपसे कहना नहीं।
श्रम से हमारे जाति उन्नति शीघ्र पा सकती सही ॥ ७ ॥

शिक्षा

हमारी शिक्षा अब तक नहीं,
हो सकी सुखद और अम्लान।
इसी से तो हम होते गये,
रुग्ण-जर्जर-विषयी मृत-प्राण ॥ १ ॥
बढ़ी जितनी ये आगे और,
कर गई उतना ही बेकार।
न बी० ए०, एम० ए० शास्त्री बन,
हमें अच्छा लगता रुजगार ॥ २ ॥

कहीं सर्विस पर मिलती नहीं,
हर जगह "नो वेकेंसी" अग्र।
और उस पर फैशन का भार,
शिक्षितों को करता है व्यग्र ॥ ३ ॥
तंग आ-आकर इस से स्वयं,
आत्म-हत्या करते असहाय।
पेट पापी से हो लाचार,
ढूँढ़ते कुत्सित अन्य उपाय ॥ ४ ॥
शीघ्र परिवर्तन इसमें नहीं,
हुआ तो समय बहुत है पास।
देख लेना आँखों से स्वयं,
मृत्यु का होगा अट्टाहास ॥ ५ ॥

मुनि

आज नंगे होकर बन रहे,
लोग मुनि भूल मूल उद्देश।
न संयम है न शास्त्र का ज्ञान,
परस्पर फैलाते विद्वेष ॥ १ ॥
क्रोध का इनका पारावार,
नहीं है नियम तपस्या ठीक।
शान्ति इन से है कोसों दूर,
आत्म-बल नहीं, न रहें निर्भीक ॥ २ ॥
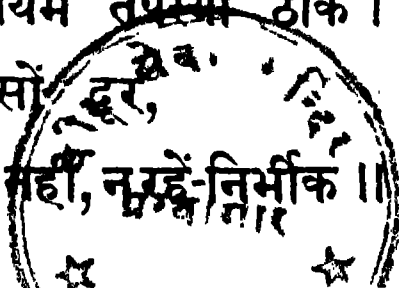
प्रतिज्ञाऐं अक्रियात्मक दिला,
श्रावकों को करते हैं तंग।
मंत्र - गंडा - तावीज - भभूत,
बांट कर जमा रहे हैं रंग ॥ ३ ॥
हमारा जो पूर्वज अभिमान,
कर दिया उसको चकनाचूर।
विश्व से लेकर के अपवाद,
जाति को किया ख्याति से दूर ॥ ४ ॥
सुधरना आवश्यक यह दशा,
नहीं तो होगा कटु परिणाम।
देर का समय नहीं अवशेष,
शीघ्र ही उचित सदा शुभ काम ॥ ५ ॥

भट्टारक

कभी था इनका सुन्दर रूप,
और थे इनके शुभतर काम।
धर्म को कठिन समय में खूब,
किया था जग में भी सर नाम ॥ १ ॥
किन्तु बढ़ गई शिथिलता आज,
बह गये घोर पतन की ओर।
ढोंग का करने लगे प्रचार,
छोड़ सिद्धान्त ज्ञान का छोर ॥ २ ॥

इसी का तो यह है परिणाम,
मान्यतायें उलटी हो गईं।
पास इनके जो निधियाँ रहीं,
बिगड़ कर सब मिट्टी हो गईं ॥ ३ ॥
आज होगये शून्य विज्ञान,
न श्रद्धा इनकी जग में रही।
मिल गया फल भी हाथों हाथ,
पाप की पाप लीक जो गही ॥ ४ ॥

ब्रह्मचारी

ब्रह्मचारी भ्रम चारी बने,
पेटचारी का बन अवतार।
सन गये इन्हीं ढोंगियों मध्य,
जो कि अच्छे भी थे दो-चार ॥ १ ॥
रंगाए कपड़े सिर को मुड़ा,
बगल में दाब चटाई एक।
ढोंग का बना नया-सा रूप,
स्वयं हो कोरमकार विवेक ॥ २ ॥
चल दिये घर से ले वैराग्य,
हृदय में पर जलती है आग।
वासना की ज्वाला में सतत,
होम करते रहते हैं त्याग ॥ ३ ॥

हो रहा है इनका अविराम,
जाति प्राङ्गण में तांडव नृत्य।
नहीं जग को इनसे संतोष,
देख कर इनके निन्दित कृत्य ॥ ४ ॥
इन्हीं के कारण से सर्वत्र,
उठ रहा सच्चों का भी मान।
इसलिये पाते हैं यह आज,
सतत ही पद-पद पर अपमान ॥ ५ ॥
उचित था आत्म-हेतु के संग,
जाति का भी करते उपकार।
किन्तु यह उल्टी गंगा बहा,
बन गये हैं समाज का भार ॥ ६ ॥

प्रतिष्ठाचार्य

प्रतिष्ठा क्या है क्या जाने,
किन्तु उसके ही हैं आचार्य।
स्वयं सुन्दर भी हैं न महन्त,
सुघरतम और न इनके कार्य ॥ १ ॥
समय असमय का इनको तनिक,
नहीं उफ! है कुछ भी परिज्ञान।
इसीसे आँख मींच निश्चिन्त,
गा रहे हैं अपने ही गान ॥ २ ॥

भले ही जाति-देश-जिन-धर्म,
रसातल के तल में धस जायँ।
किन्तु ये तो झोली भर द्रव्य,
दक्षिणा में अपनी पा जायँ॥ ३॥
किन्तु अब तो उन्नति के हेतु,
रोकना होगा यह व्यापार।
प्रतिष्ठा हो न प्रतिष्ठाचार्य,
स्वयं चुप होंगे तब झकमार॥ ४॥

जैनी

वर्तमान के जैन-जैन पन से रीते हैं!
पास नहीं जैनत्व-व्यर्थ जग में जीते हैं!
उनकी दशा निहार-अश्रु धारा बह आती!
वर्णन करते अरे फटी जाती है छाती!
ग्यारह-बारह लाख सभी संख्या में आवें!
नहीं एक भी जैन-सार्थक उनमें पावें!
लख दैनिक व्यवहार-आज संसार पुकारे!
वर्तमान के जैन-समुन्नत पथ पर सारे!
किन्तु समुन्नत चिह्न एक भी नहीं दिखाता!
धर्म बन्धु से तोड़ दिया है मानो नाता!
अपना पूर्वादर्श आज वे भूल रहे हैं!
पाप हिंडोला डाल उसी में झूल रहे हैं!

शान्ति उपासक कभी जगत में यही कहाते !
लड़ते कैसे आज रात-दिन कलह मचाते !
हा ! कितना अज्ञान, फूट इनको भाती है !
इस कारण ही इन्हें एकता ठुकराती है !

देख कलह-प्रिय इन्हें शर्म हमको आती है !
क्योंकि न इनको रञ्च मेल की बू भाती है !
जैनी किसको कहें, नहीं यह उत्तर आता !
नाम जैन है, किन्तु जरा जैनत्व न नाता !

जैसे हम हैं गिरे आज क्या और गिरे हैं ?
क्या उनके ही लिये उदय के भाग्य फिरे हैं ?
नाम मात्र के लिये जैन है नाम हमारा !
फिर कैसे कर सकें धर्म-उत्थान हमारा !

जब खुद ही जैनत्व भाव में नहीं समाते !
तब कैसे हम अन्य जनों को जैन बनाते !
पूर्वज जैनी लोग सभी को गले लगाते !
नहीं किसी के लिये हृदय संकुचित बनाते !

किन्तु आज हा ! नहीं किसीको हम अपनाते !
किया धर्म को कैद चौकसी स्वयं लगाते !
कायर बने अपार आत्म-बल पास नहीं है !
शक्ति सुधा के लिये हृदय में प्यास नहीं है !

पंडित

(१)

जिन पण्डितों का एक दिन संसार में सन्मान था।
निज धर्म के उत्थान का जिनको बड़ा ही ध्यान था॥
करते रहे जग में प्रकाशित धर्म को निज ज्ञान से।
हा! आज उन विद्यार्णवों का व्याप्त मन अभिमान से॥

(२)

देखो, परस्पर की कलह में आज उनका धर्म है।
उठ तक गया उनके हृदय से धर्म का अभिमर्म है॥
निष्पक्ष होके वस्तु निर्णय की उन्हें सौगन्ध है।
कहते प्रथम से रूढ़ियों का धर्म से सम्बन्ध है॥

(३)

शुभ ज्ञान के बदले हमें अज्ञान-धारा दे रहे।
उद्देश्य हीन बने हुए ये धर्म-नौका खे रहे॥
कचरा हटाने में अभी तक ये समझते पाप हैं।
आश्चर्यकारी पण्डितों के आज कार्य-कलाप हैं॥

(४)

हठ-भूत के आधीन होकर सत्य की चोरी करें।
हा! सत्य में भी व्यर्थ वाद-विवाद मुँहजोरी करें॥
निन्दा तथा बकवाद से कुछ काम है चलता नहीं।
पाण्डित्य खोकर आज हम जीवित न रह सकते कहीं॥

बाबू

(१)

कहे जाते हैं बाबू किन्तु,
हृदय है इनका बहुत उदार ।
धर्म के लिये जान को स्वयं,
लड़ा देने को हैं तैयार ॥

(२)

जाति की देख दशा यह क्षीण,
चाहते करना यहाँ सुधार ।
उसी का सतत यत्न कर खूब,
कर रहे हैं दृढ़ सफल प्रचार ॥

(३)

किन्तु इनमें भी है आलस्य,
और अति स्पीचों का रोग ।
वचन से कहते जितना अधिक,
नहीं करते उतना उद्योग ॥

(४)

खैर, कुछ भी हो इनसे जाति,
लगाये बैठी अपनी आस ।
किसी के भी द्वारा हो किन्तु,
जाति को इच्छित आज विकास ॥

युवक

युवक कह दूं क्या मैं भी इन्हें ?
यही तो सोच रहा हूँ आज।
नहीं इनमें कुछ भी युवकत्व,
युवक कहते भी आती है लाज ॥ १ ॥

नहीं साहस-उत्साह-विवेक,
मोद—करुणा—जीवन—वीरत्व ।
तेज-छवि लगन प्रेम-सौन्दर्य,
नहीं बल-विक्रम-वीर्यज-तत्त्व ॥ २ ॥

हो रहे हैं ये तो निष्प्राण,
खिलौने मिट्टी के आकार ।
बोलते—चलते—फिरते यहीं,
कर रहे हैं जग का अपकार ॥ ३ ॥

अगर इनका बस चलता कहीं,
छोड़ सब कुछ हो जाते दूर।
मौज में रहते को फिर मस्त,
बनाते जीवन चकनाचूर ॥ ४ ॥

भूल है इनसे रखना आश,
नहीं कर सकते ये कुछ काम।
बहाने लगते इनको देख,
हाय ! लोचन आँसू अविराम ॥ ५ ॥

बालक

सत्य ही बालक हमारे देश की खिलती कली।
जाति की आशा इन्हीं पर सर्वदा फूली फली॥
रम रहा इनमें जगत का स्वर्ण-प्रोत प्रभात है।
बाल आशा केन्द्र हैं यह विश्व में विख्यात है॥ १॥
यह यदपि शुभ ज्ञान के द्वारा सतत उन्नत बनें।
ज्ञान-भान विवेक-विद्या-बुद्धि में नितप्रति सनें॥
तो बड़े होकर चमकते नील मण्डल में यही।
गौरवान्वित बाल-लालों से सदा होती मही॥ २॥
यह जगत में पूर्वजों का ज्ञान-बल विस्तारते।
और दुःखित जन्म-भू का भार-बोझ उतारते॥
पतन मुख से देश-धर्म-समाज-जाति उबारते।
जान तक हँसते हुए वे हेतु इसके वारते॥ ३॥
किन्तु हों किस भाँति विकसित यह उभरती क्यारियाँ?
हैं हमीं पर आज यह सम्पूर्ण जिम्मेदारियाँ॥
प्रेम-रस से नित्य हम इनको न यदि सिञ्चायंगे।
तो बिना विकसित हुए यह आप मुरझा जायंगे॥ ४॥

विद्यार्थी

देख कर होता है अफसोस,
अवस्था इनकी गिरती आह!

क्षीण-जर्जर-अशक्त से रुग्ण,
मलिन मुख है फिर भी है चाह ॥ १ ॥
सदा फैशन से कर अनुराग,
उड़ाते हैं जीवन की धूल ।
इसी से ये मुरझा से रहे,
हाय! असमय में सुरभित फूल ॥ २ ॥
सीख कर दुर्व्यसनों को सद्य,
भूल जाते हैं अपना ध्येय ।
सफलता के बदले में स्वयं,
बना लेते हैं पथ दुर्ज्ञेय ॥ ३ ॥
न फिर रह पाते विद्यार्थी,
हृदय में धधका करती आग ।
अध्ययन छोड़-छाड़ कर स्वतः,
मनाने लगते हैं रंग-राग ॥ ४ ॥
सद्य यदि परिवर्तन कुछ नहीं,
हुआ इनमें तो निश्चय भोर ।
नहीं होगा इनका उत्थान,
क्योंकि जारहे पतन की ओर ॥ ५ ॥

अध्यापक

पढ़ाना है बस इनका काम,
इसी से बचवा देते ग्रन्थ ।

भले ही छात्र न समझे तनिक,
ग्रन्थ का पर कर देते अन्त ॥१॥
बताते हैं न प्रेम से पाठ,
गाँठते हैं पर अपना रङ्ग।
डांट दे-दे कर उलटी और,
छात्र को कर देते हैं तङ्ग ॥२॥
पढ़ाई होवे कैसे ठीक,
न जब इनको है इसका ज्ञान।
हाय ! अध्यापक मंडल को,
नहीं कुछ है भावी का ध्यान ॥३॥

ग्रेजुएट

अरे है ग्रेजुएट—स्टुडेन्ट,
इसी से है फैशन से प्यार।
रात-दिन स्टेडी को छोड़,
किया करते अपना श्रृङ्गार ॥ १ ॥
किसी मिस[1] के किस में हो मस्त,
भूल जाते दुनियाँ के काम।
नींद—खाना—पीना—आराम,
इन्हें हो जाता सभी हराम ॥ २ ॥
जला करती अन्तर में सतत,
वासना की ज्वाला बन दाह।

१—चुम्बन।

झुलस कर जिससे यौवन-कुसुम,
सदा ही मुर्झा जाता आह ॥ ३ ॥
हाय ! असमय में करके शोक,
उड़ा देते जीवन की धूल ।
सरल अपने पथ में अति तीक्ष्ण,
बिछा लेते विघ्नों के शूल ॥ ४ ॥
निराशा मय आशा का रूप,
देख कर हो जाते हैरान ।
इसी से आकर परवस तंग,
छोड़ तक देते हैं निज प्राण ॥ ५ ॥
बड़ा ही बिगड़ रहा है आज,
और भी यही बढ़ रहा ढंग ।
एक दिन होगा दुखमय अन्त,
रहा ऐसा ही इनका रंग ॥ ६ ॥

श्रीमान्

रात-दिन इनका यह है लक्ष्य,
लक्ष्मी का चिन्तन बस एक ।
किसी भी तरह द्रव्य आ जाय,
पाप या पुण्य नहीं कुछ टेक ॥ १ ॥
सदा अपनी धुन में हैं मस्त,
विभव-मद पीकर के अत्यन्त ।

भूल दुखियों की दुखमय दशा,
मनाते हैं नित-प्राय वसन्त ॥ २ ॥
वासना के साधन में मुक्त,
हस्थ से करते हैं धन नाश।
अनाथों की विनती पर सदा,
कहा करते न हमारे पास ॥ ३ ॥
कहीं पदवी मिलती हो जरा,
खर्च कर दें दस-बीस हज़ार।
दुःखिनी विधवाओं के लिये,
न देंगे कौड़ी भी दो चार ॥ ४ ॥
दुखित बेबस लाचार अपङ्ग,
जनों का करते हैं उपहास।
चूस कर उनका ही तो रक्त,
कर रहे हैं ये आज विलास ॥ ५ ॥
जाति से इनको तनिक न नेह,
न कुछ है उसका इनको ध्यान।
भले ही धर्म रसातल जाय,
न कुछ परवा करते श्रीमान् ॥ ६ ॥

श्रीमान् की सन्तान

मौज है क्या करना है इन्हें,
क्योंकि हैं धनिकों की सन्तान।

कमी है किसी बात की नहीं,
सभी तो सुख हैं स्वर्ग समान ॥ १ ॥
सदा पलते दुलार के बीच,
और रहते हैं हाथों-हाथ।
करा लेते हैं अड़कर जभी,
निकल जाती जो मुँह से बात ॥ २ ॥
आलसी कायर रुग्ण शरीर,
और नारी से हैं सुकुमार।
नहीं चल सकते पग भी एक,
जन्म से इन्हें चाहिये कार[1] ॥ ३ ॥
सीख कर क्या करना फिर कहो,
ज्ञान कौशल्य जरूरत नहीं।
भला पढ़ कर क्या करना इन्हें,
बताओ तुम्हीं नौकरी कहीं ॥ ४ ॥
सदा असमय में फँसकर स्वयं,
वासना के हो जाते दास।
स्वास्थ्य-सुन्दरता श्री का सतत,
किया करते फिर सत्यानाश ॥ ५ ॥
अन्त में जीवन का अवशेष,
और भी हो जाता है पास।
नहीं कर सकते ये कुछ काम,
भूल है इनसे करना आश ॥ ६ ॥

१—मोटर

महिला-महत्व

(१)

नारी निर्मल त्याग मूर्ति है,
संस्कृति की अनुपम स्फूर्ति है,
प्रकृति कला की प्रबल पूर्ति है,
महिमा अपरम्पार !

(२)

मञ्जल मानस तूप अनूपम,
विश्व विभूति दिव्य चिद्रूपम,
आत्म धर्म की प्रतिनिधि रूपम,
आनन्दित झङ्कार !

(३)

सेवा—दया—शीलता—क्षमता;
गौरव की उज्ज्वलतम-ममता,
सीता-सावित्री की समता-
का पुनीत साकार !

(४)

पुण्य-प्रेम की निर्मल धारा;
जीवन-मण्डल का ध्रुव-तारा,
आनन उज्ज्वल रहे तुम्हारा;
तुम हो मुक्ता-हार !

महिला-महिमा

मिलकर हम सारी महिलायें,
आपस में सब प्रेम बढ़ायें,
द्वेष हृदय में कभी न लायें,
हो छल कपटों से छुटकारा।
जीवन उन्नत बने हमारा ॥ १ ॥

महिलाओं में शक्ति प्रबल है,
योद्धाओं से बढ़कर बल है,
कठिन कार्य भी हमें सरल है,
अर्पण कर दें तन मन सारा।
जीवन उन्नत बने हमारा ॥ २ ॥

हमें समझते जो अबलायें,
अब उनका सन्देह मिटायें,
कार्य-क्षेत्र में पैर बढ़ायें,
रहें अटल जैसे ध्रुवतारा।
जीवन उन्नत बने हमारा ॥ ३ ॥

आओ बहिनो आगे आओ,
ग को अपना शौर्य दिखाओ,
अपनी सोई शक्ति जगाओ,
हो फिर भारत में उजियारा।
जीवन उन्नत बने हमारा ॥ ४ ॥

स्त्री-समाज

काव्य और साहित्य हीन हो बनी महा अज्ञाना।
कौन कहेगा कभी रहीं हम सबलाएँ गुणखाना ?
गत विदुषियां भला जग कैसे अब हम में पहिचानें ?
है निरक्षरा चक्रवर्ति तीर्थङ्कर की सन्तानें ॥ १ ॥

उन्नति शील हो रही निशि-दिन भारत की महिलाएँ।
जैनेतर पत्रों में उनकी चमक रहीं रचनाएँ ॥
प्राप्त नित्य सम्मान हो रहा उनको काव्य जगत् में।
बढ़ा रहीं गौरव समाज का होकर रत उन्नत में ॥ २ ॥

किन्तु हमारी जैन भगिनियों की विपरीत दशा है।
चढ़ा रूढ़ियों का उनके शिर पर अज्ञान नशा है ॥
जैनेतर क्या जैनों में भी उनका नाम नहीं है।
मानों उन्नति दशा उन्हें लगती अभिराम नहीं है ॥ ३ ॥

पत्र जगत में उनको लिखना पढ़ना आदि न आता।
और सीखने का प्रयत्न भी उनको तनिक न भाता ॥
यद्पि सुरुचि हो तो दुनियां में कुछ भी नहीं कठिन है।
किन्तु यहां अच्छी बातों में रुचि घटती दिन-दिन है ॥ ४ ॥

ऋषभ देव की ब्राह्मि पुत्री ने भाषा ज्ञान प्रसारा।
किया जाति का भू-मण्डल में उज्ज्वल मुख उजियारा ॥
किन्तु आज वह तुमने अनुपम अक्षर ज्ञान बिसारा।
डग-मग नैया पकड़ सकेगी कैसे भला किनारा ? ॥ ५ ॥

कहो पतन के कारण पर भी तुमने कभी विचारा ?
या यों ही यह व्यर्थ जायगा उत्तम जीवन सारा ?
बार-बार यह कभी न मिलता मानव जीवन प्यारा।
स्वर्ग-मोक्ष विख्याति सफलता सब कुछ इसके द्वारा ॥ ६ ॥
अतः चेत कर हे बहिनों ! कर्त्तव्य क्षेत्र में आओ।
अपनी छिपी शक्ति का कौशल फिर जग को दिखलाओ।
अबला-अज्ञाना-मूर्खा का लगा कलङ्क मिटाओ।
साहस-शौर्य-शक्ति-बल को फिर एक बार चमकाओ ॥ ७ ॥

आर्जिकाएँ

आर्जिकाएँ आत्म-उन्नति लोक का नक्षत्र हैं।
यह हमारे दिव्य जीवन का विमलतर छत्र हैं॥
आज भी गत आर्जिकाओंकी विमल जीवन कथा।
नारियों की कीर्ति का विस्तार करती सर्वथा॥ १ ॥
घोर तप-व्रत-शील-संयम-कर्म सञ्चालन किया।
दृढ़ विमल रह कर सदा सद्धर्म का पालन किया॥
धन्य थीं वे धन्य थीं आदर्श उनका भोग्य है।
आज भी संसार में वे वन्दना के योग्य हैं॥ २ ॥
किन्तु अब की आर्जिकाओं का नया ही रंग है।
मानिये बहने लगी पश्चिम दिशा में गङ्ग है॥
कारनामा आज इनका जो सुनाई आ रहा।
जैनियों का नित्य इससे शीश झुकता जा रहा॥ ३ ॥

सत्य ही यह सब हमारी हीनता के गेह हैं।
यह पतन के गर्त हैं इसमें न कुछ सन्देह हैं ॥
एक केवल पाप ही रौरव नरक का मूल है।
धर्म पर यह पाप तो सचमुच भयङ्कर शूल है ॥ ४ ॥
खोल यह कटु सत्य मानों मोल लेना द्वन्द है।
द्वन्द की उत्थानिका खुद भी हमें न पसन्द है ॥
मौन से भी दोष का होता नहीं निस्तार है।
और इसका जिक्र भी यह एक भाँति प्रचार है ॥ ५ ॥
किन्तु फिर भी यह न दुहराना हमें स्वीकार है।
क्योंकि निन्दा ही न निन्दा का उचित प्रतिकार है।
सिर्फ इसमें तो हमारा एक यह मन्तव्य है।
आर्जिकाओं का विमल उज्ज्वल-धवल कर्त्तव्य है ॥ ६ ॥

लेखिकाएं

लेखिकाओं का हमारी जाति मध्य अभाव है।
आज पढ़ने और लिखने का न इनको चाव है।
लेख ही सुन्दर विचारों का मनोहर चित्र है।
पथ बताने के लिये यह क्षेत्र श्रेष्ठ पवित्र है ॥ १ ॥
जाति में ये लेखिकाएं सिर्फ जो दो-चार हैं।
किन्तु यह अत्यन्त छोटे क्षेत्र का शृङ्गार हैं ॥
जैन महिलादर्श में अपवाद बस यह बन रहीं।
छोड़ कर उसको कहीं अन्यत्र लिख सकती नहीं ॥ २ ॥

किन्तु इसमें भी हमेशा एक-सा लिखती सभी ।
खोज पूर्ण महत्त्व की चीजें न लिख सकती कभी ॥
और क्या इनसे भला यह आश हो सकती कहीं ।
जो कि इमला भी अभी तक शुद्ध लिख सकती नहीं ॥ ३ ॥
लेख के नियमादि से यह सर्वथा अनभिज्ञ हैं ।
जब कि जग की नारियाँ विदुषी तथा नीतिज्ञ हैं ॥
अब हमें निज क्षेत्र को व्यापक बनाना चाहिये ।
क्षुद्र उन्नति पर न हमको रीझ जाना चाहिये ॥ ४ ॥

कवियित्रियाँ

महिलाओं का एक पत्र है "महिला दर्श" पुराना ।
उस तक को भी निज कृतियों सीखा नहीं सजाना ॥
पुरुषों की रचनाएँ उसमें भी वाञ्छित रहती हैं ।
शर्म करें हम ! मूक शब्द में मानो वह कहती हैं ॥ १ ॥
भाषा की त्रुटियाँ तो बिल्कुल छोटा उदाहरण है ।
पिंगल-प्रास-छन्द-नियमों की त्रुटियाँ साधारण है ॥
जैन जाति पर भारत भर से ज्यादा चंचल धन है ।
किन्तु काव्य की अमर कीर्ति में यह सब से निर्धन है ॥ २ ॥
जहाँ नारियाँ अन्य जाति की चमक रहीं बन तारा ।
वहाँ निरन्तर हाय हो रहा है अधिपतन हमारा ॥
सूख गई है बहते-बहते शब्द ज्ञान की धारा ।
काव्य-कला-कौशल-कविता से हुआ सहज निपटारा ॥ ३ ॥

महिलाएँ

हमारी महिलाओं को आज,
नहीं है कुछ भी अपना ध्यान ।
नहीं शिक्षा से करती प्रेम,
बढ़ रहा है इनमें अज्ञान ॥ १ ॥
नित्य फैशन की है भरमार,
शौक का इनके ओर न छोर ।
इसी से तो सुखमय घर-बार,
बढ़ रहे हैं विनाश की ओर ॥ २ ॥
भीरु हैं इतनी जिससे नहीं,
कभी कर सकती निज उत्थान ।
बना सकती हैं कभी न योग्य,
वीर दृढ़ बलशाली सन्तान ॥ ३ ॥
नहीं अत्याचारों का कभी,
स्वयं कर सकती हैं प्रतिकार ।
बन्धनों की बेड़ी को काट,
खोल सकतीं न मुक्ति का द्वार ॥ ४ ॥
क्षमा भी है इनमें कुछ नहीं,
नहीं है और उग्र भी क्रोध ।
किसी अवसर पर रिपु से सद्य,
ले सकें जिससे ये प्रतिशोध ॥ ५ ॥

नहीं कुछ है सतीत्व माहात्म्य,
मचादें जिससे हा हा कार।
विश्व में गुञ्जित हो सर्वत्र,
एक दम इनका जय-जयकार ॥ ६ ॥
इसलिये इनमें जब तक नहीं,
उचित परिवर्तन होगा भव्य।
नहीं तब तक सुधरेगा सत्य,
आप कुछ कर देखो भवितव्य ॥ ७ ॥

अशिक्षित नारियाँ

शिक्षित नहीं जिस जाति में हैं वीर भारत नारियाँ।
उस जाति में होंगी न क्यों कर सैकड़ों बीमारियाँ ॥
जब जड़ नहीं पक्की कहो वह भीत ही किस काम की।
है धार ही जिसमें नहीं तलवार है वह नाम की ॥ १ ॥
माता नहीं कर प्राप्त पाई है कहो जिस ज्ञान को।
तो क्या सुधारेंगी भला वह लाड़ली सन्तान को ॥
है ज्ञान की क्या बात यह जाने नहीं शिशु पालना।
फिर क्यों न हो निर्बल-दरिद्री जाति वह कंगालना ॥ २ ॥
मैं मातृ-मण्डल की यहाँ कुछ गलतियाँ बतला रहा।
यह है न कोरी कल्पना अनुभव तुम्हें जतला रहा ॥
अति हो रहा था एक शिशु दुःखित शिशिर की पीर से।
यदि चाहते होता निरोगी एक लघु तदवीर से ॥ ३ ॥

देकर दवा उसको गरम वह मुक्त करती रोग से ।
क्षण मात्र ही में सुक्ख पाती दुःख के उस जोग से ॥
पर नहीं देकर दवा वह बैठकें दिलवा रही ।
हा ! बोतलों पै बोतलें मदिरा उसे पिलवा रही ॥ ४ ॥
फिर धूल देकर हाथ में वे बाँधते गण्डा गला ।
शिर को हिला कर कह रहा था ईश कर देगा भला ॥
कुछ ही समय में जगत निधि से लाल नौका बह गई ।
हा ! धूल केवल धूल माँ के हाथ में बस रह गई ॥ ५ ॥
जो ज्ञान होता यदि उन्हें तो यह दशा होती नहीं ।
निज हाथ से ही लाल अपना वह कभी खोती नहीं ॥
फिर आप भी सन्तान का यह दुख असह सहते नहीं ।
हा ! शोक पारावार में यों भूल कर बहते नहीं ॥६॥
हे जैनियो ! निज पुत्रियों को आप शिक्षित कीजिये ।
निज जाति के उत्थान का गुरु भार कर में लीजिये ॥
हम थे प्रथम बलवान् जैसे आज फिर वैसे बनो ।
यह रूढ़ियाँ इस भाँति की निज जाति से जल्दी हनो ॥७॥

गहने

बहिनों इनसे नाता तोड़ो,
झूठी बातों से मुख मोड़ो,
सबला हो अबलापन छोड़ो,
बहुत हुआ संहार ॥ १ ॥

यह शरीर पर क्या पहना है ?
क्या सुहाग का यह गहना है ?
धन्य तुम्हारा क्या कहना है,
गहनों पर बलिहार ! ॥ २ ॥
दीवाली के "करुवे" साबुत,
वह चिकनी मिट्टी जैसा बुत,
ध्रुव कर्त्तव्य कार्य से हो च्युत,
बैठी ज्ञान विसार ! ॥ ३ ॥
क्या सुहाग है नाम इसी का ?
क्या वे गहना है विदुषी का ?
कुछ भय भी है तुम्हें किसी का ?
बनी पतन चीकार ॥ ४ ॥
घुली इसी से तुम जाती हो,
राग इसी का नित गाती हो,
उन्नति तनिक न कर पाती हो,
कैसा मायाचार ! ॥ ५ ॥
गहना है आदर्श तुम्हारा,
ऊंचा है न विमर्श तुम्हारा,
कैसे हो उत्कर्ष तुम्हारा ?
नित्य व्यर्थ अभिसार ! ॥ ६ ॥
यदि अन्यत्र कहीं तुम जातीं,

तो तुम गुण न कभी अपनातीं,

बस गहनों पर दृष्टि जमातीं,
नव निर्मित आकार ! ॥ ७ ॥
जो उसमें पसन्द हो आया,
नशा उसी का तुम पर छाया,
घर आते ही शोर मचाया,
ये गहने दरकार ! ॥ ८ ॥
चिन्ता नहीं करें पति चोरी,
घर की बेचें थाल-कटोरी,
हा ! यह कैसा कर्म अघोरी,
यह कैसा श्रृंगार ? ॥ ९ ॥
मनमानी यदि हुई तुम्हारी,
तब तो बात ठीक है सारी,
अथवा हुआ प्रलय भय कारी,
घर में हा-हा-कार ! ॥ १० ॥
यह गहने न महान् व्यथा है,
इसने ही तो तुम्हें मथा है,
तकती हो यह दर्द कथा है,
फेंको इन्हें उतार ! ॥ ११ ॥
किन्तु न ऐसा अर्थ लगाना,
'मेम' चाहता तुम्हें बनाना,
या भारत में योरुप लाना,
यह है पतन तुषार ! ॥ १२ ॥

क्या ऐसा करके रोना है ?
भारत का गौरव खोना है ?
ऐसा कभी नहीं होना है–
बहिनो भ्रष्टाचार ! ॥ १३ ॥

यद्यपि ऐसा होगा तौ तब,
भारत स्वर्ग बनेगा रौरव,
नष्ट भ्रष्ट होगा सब गौरव,
होगा वण्टा ढार ! ॥ १४ ॥

मतलब यह है सारी बहनें,
सत्य-शील-संयम के गहनें,
अपने कोमल तन पर पहनें,
बढ़े ज्ञान विस्तार ! ॥ १५ ॥

तुम्हें नहीं यह शोभा पाता,
कञ्चन कीचड़ में न सुहाता,
'मणि' तो सदा मुकुट में भाता,
तुम हो मणि मनुहार ! ॥ १६ ॥

पर्दा

पर्दा बिना दो पांव चलने में इन्हें संकोच है।
हा ! वज्र इनकी मूर्खता पर आज सब को सोच है ॥
लज्जा हृदय का श्रेष्ठ गुण सब आज घूंघट में पिसा।
चहुँ ओर से घेरे हुए अज्ञान की काली निशा ॥ १ ॥

संकोच क्यों होता जगत को मुख दिखाने में इन्हें।
हमने कमी की सर्वदा सद्‌गुण सिखाने में इन्हें॥
मानों प्रगट ये कह रही हैं आज घूंघट से यही।
जाता रहा है आत्म-रक्षा-भाव हा! हम से कहीं॥ २॥
जो नारियाँ जितना बड़ा घूंघट सदैव निकालतीं।
उतना अधिक प्राणेश पति कर्त्तव्य अपना पालतीं॥
इस राक्षसी पर्दा-प्रथा से आत्म-बल जाता रहा।
इन नारियों में हो कहाँ जब बल हमारा ही बहा॥ ३॥

पुत्राभिलाषा

पुत्राभिलाषा से यहाँ की नारियाँ करतीं न क्या?
सादर कुदेवों के चरण में शीश निज धरतीं न क्या?
विज्ञापनों की कौनसी शुभ औषधी इनसे बचे।
सुत-हेत जगका निन्द्य अति दुष्कृत्य भी इनको रुचे॥ १॥
गंडे तथा तावीज बंधवाती फकीरों से सदा।
प्रच्छन्न वे दे डालतीं प्राणेश की बहु सम्पदा॥
आके किसी के चक्करों में कान फुकवातीं कभी।
हाफ़िज़ व मुल्ला पीर स्यानों को बुला लातीं कभी॥ २॥
काली-भवानी-देवियों का ध्यान वे धरतीं फिरें।
दुष्कार्य उनके नाम पर संसार में करतीं फिरें॥
संतान-हित पाखण्डियों को मिष्ट भोजन दे रहीं।
सत्कार में, उनसे जड़ी या राख, मिट्टी ले रहीं॥ ३॥

वे ढोंगियों के पास जाकर मांगती सन्तान हैं।
वे पूजती आधी निशा को नित्य कबरिस्तान हैं॥
उपवास-व्रत-तप-दान सब सुत हेत ही करती सदा।
अपमान के अतिरिक्त पर मिलता नहीं कुछ सर्वदा॥ ४॥

विधवाओं की दुर्दशा

जब हत हृदय इनकी व्यथा को देख कर रोते अहो।
तन धारियों का चित्त क्या फिर दुःखसे व्याकुल न हो॥
निर्दोष निज-जीवन बिताना लोक में अनिवार्य है।
यों जीतना कामाग्नि को तो और दुष्कर कार्य है॥ १॥
इन देवियों का चित्त कोमल शोक का भण्डार है।
अन्तःकरण इनका सदा ही हो रहा अतिक्षार है॥
ऊपर दिखाने के लिये सर्वेश की माला जपें।
पर लाल गोले के सदृश अन्तःकरण उनके तपें॥ २॥
कविराज-लेखक-लेखनी भी लिख नहीं सकती व्यथा।
संसार-भर से भी अधिक दुख से भरी इनकी कथा॥
घनघोर इनके आर्तरव से सब दिशाएं व्याप्त हैं।
शुभ कार्य इनकी शाप से ही आज शीघ्र समाप्त हैं॥ ३॥
उद्देश्य बिन जीना जगत में क्या किसी का इष्ट है।
कुछ लक्ष्य विधवा-जाति का न समाज में अवशिष्ट है॥
वे शीघ्र मरना चाहती हैं किन्तु मर सकती नहीं।
परिवार अत्याचार से शुभ कार्य कर सकती नहीं॥ ४॥

चहुं ओर जीवन में विकट अन्याय का घेरा पड़ा।
अन्तःकरण में सर्वदा दुख शोक का डेरा पड़ा॥
झरनों सदृश बहता सदा उनके दृगों से नीर है।
कोई न कह सकता कभी उनके हृदय में पीर है॥ ५॥

हा! आज विधवा जाति जग में सर्वथा असहाय है।
निज पेट पोषण के लिये उनके न पास उपाय है॥
रोना परिश्रम पीसना बस भाग्य में उनके बदा।
परिवार वाले लूट पहिले ही चुके पति सम्पदा॥ ६॥

असहाय जन की जो दशा होती गहन मझदार में।
इन नारियों की भी दशा है ठीक वह संसार में॥
सद्धर्म कृत्यों में सदा ही चित्त तो लगता नहीं।
कोई सदा सोता नहीं कोई सदा जगता नहीं॥ ७॥

मिलता इन्हें अति घोर श्रम के बाद ही आहार है।
फिर नित्य पड़ती सास ननदों की कड़ी फटकार है॥
तू तो हमारे गेह में है भूतनी या डाकिनी।
आकर प्रथम ही खा लिया पति-देव को चाण्डालिनी॥ ८॥

अन्याय से होके दुखित वे रह न सकती धर्म में।
वे अन्त में लाचार होती हैं प्रवृत्त अधर्म में॥
तब तो लगे दोनों कुलों में अति भयङ्कर कालिमा।
हा! नष्ट हम करते स्वयं परिवार की गत लालिमा॥९॥

देवियों की मान्यता

विषय पूर्ति के लिये सिर्फ होतीं महिलायें !
और कार्य के लिये कहातीं हैं अबलायें ! ॥१॥

उनके सब अधिकार हमारे ही कहलायें !
ऐसी रखते समझ जानते नहीं कलायें ! ॥ २ ॥

जो कहते भी नहीं हृदय में तनिक लजायें !
"तिरियों में गुण तीन" और कुछ नहीं कलायें ! ॥३॥

जनती हैं सन्तान रसोई नित्य बनायें !
विविध भाँति के यही सुरीले गीत सुनायें ! ॥ ४ ॥

जो महिलायें कभी देवियां कहलाती थीं !
सारे निज अधिकार नित्य अर्द्धाङ्गिनि बन पाती थीं ! ॥ ५ ॥

पाती हैं अपमान आज वे हमसे भारीं ।
कैसे होगा त्राण सिसकती हैं जब नारीं ॥ ६ ॥

जैन-पत्र

लेखकों का और पत्रों का परस्पर स्वार्थ है।
यों हिचकते सत्य में कहते न बात यथार्थ है॥
किन्तु इस दब्बूपने से काम क्या चलता कहीं।
सत्य ये है पत्र कोई जाति में है ही नहीं॥ १॥

आइये अब आप भी यह पतन चित्र निहारिये।
सत्य क्या है फिर इसे स्वयमेव आप विचारिये॥
इस रचयिता के कथन पर ही कदापि न जाइये।
आप भी तो विज्ञ हैं अपने विचार बनाइये॥ २॥

जैनियों के इस समय बाईस पत्र मयंक हैं।
किन्तु वे अधिकांश में इसका महान कलंक हैं॥
पत्र के शब्दार्थ तक का भी न इनको ज्ञान है।
पत्र ही कहना इन्हें यह पत्र का अपमान है॥ ३॥

पढ़ इन्हें विद्वान कोई पत्र कह सकता नहीं।
पत्र के साहित्य-सर में रञ्च बह सकता नहीं॥
देख इनको पाठकों का सहज कह उठता हिया।
कीमती इसमें समय बर्बाद क्यों हमने किया॥ ४॥

पत्र का सिद्धान्त क्या इनमें न पायेंगे कहीं।
प्राणदा आदर्श या उद्देश इनका है नहीं॥
यह सुधारक आज हैं तो कल बिगाड़क बन गये।
आज उन्नति लीन हैं तो पंक में कल सन गये॥ ५॥

यह नया साहित्य एकत्रित न करके छापते ।
एक मुद्दत का पुराना राग आज अलापते ॥
पढ़ चुके जिसको अनेकों बार क्या उसको पढ़ें ।
तो, न ऐसे पत्र क्यों फिर भेंट घूरे की चढ़ें ॥ ६ ॥
पत्र का आदर्श ऊंचा है यही इतिहास में ।
नित्य जाता हो समय पर पाठकों के पास में ॥
किन्तु अपने जैन पत्रों की निराली नीति है ।
मानिये इस जल्द बाजी से न उनको प्रीति है ॥ ७ ॥
शुक्र का रवि तक निकलता पत्र कोई स्यात् है ।
एक-दो सप्ताह की देरी न कोई बात है ॥
सामयिकता की कभी फलती नहीं इनमें लता ।
या बिना सूचित किये रहते महीनों लापता ॥ ८ ॥
एक ही आकार में रहते न ये कायम कभी ।
यह पलक में ही नई काया-पलट लेते अभी ॥
ठीक भी है जैन तो "एकान्त वाद" न मानते ।
रंग यों ही एक चमकाना नहीं यह जानते ॥ ६ ॥
कुछ नहीं रखते मसाला पाठकों के ज्ञान का ।
लाभकारी पथ प्रदर्शक स्वर्ग के सोपान का ॥
सार गर्भित लेख तो इनमें कभी रहते नहीं ।
लोक हित की बात कोई भूल कर कहते नहीं ॥ १० ॥
श्रेष्ठ कविता छापना इनके लिये संघर्ष है ।
सिर्फ इनका इस दिशा में एक यह आदर्श है ॥

पत्र की तारीफ में सड़ियल प्रथम छप जायगी।
शुद्ध कविता मुद्दतों तक ठोंकरे ही खायगी ॥ ११ ॥
प्रेम पर अब रह गया इनको नहीं श्रद्धान है।
किन्तु यह करते सदा गृह युद्ध का आह्वान है ॥
यह परस्पर के विखण्डों में सने रहते सदा।
युद्ध में भटियारियों को भी हराते सर्वदा ॥ १२ ॥
एक-दो होकर दिगम्बर और श्वेताम्बर बनें।
विश्व प्रेमी धर्म में किञ्चित न दोनों ही सनें ॥
पक्षपातोन्मत्त हो यह कुछ न करने से डरें।
साम दामोदण्ड का उपयोग दोनों ही करें ॥ १३ ॥
भयद हौवे की तरह यह सत्य भाषण में डरें।
स्वार्थ साधन के लिये यह केशरी बाना धरें ॥
देश उन्नति धर्म उन्नति या समाजोन्नति करे।
आश यह इनसे भला है राम-राम-हरे-हरे ॥ १४ ॥
किन्तु इस पर भी सदा यह रोवना रोते बड़ा।
बिगत में इतना पड़ा इस साल यह घाटा पड़ा ॥
लौट कर अधिकांश वी० पी० आगई सब पास है।
ग्राहकों की अल्प संख्या हो रही नित ह्रास है ॥१५॥
ठीक भी है यह निकम्मे पत्र कोई क्या करे?
व्यर्थ क्यों अपनी कमाई आप के उर में भरें?
मान लो दस-बीस व्यक्ति विशेष हों ऐसे न भी।
किन्तु जन बहुमत 'हुकमचन्द' तो न हो सकता कभी?॥१६॥

पत्र जग को और गुँजायश न इसमें लेश है।
एक ही अवलम्ब इनका और बचता शेष है॥
धर्म पर वह सिर्फ़ एक सहायता की आड़ है।
पल्लवोंमें किन्तु यह अक्रियात्मक पत झाड़ है॥१७॥
छोड़िये अच्छा इसे भी किन्तु यह सुनिये ज़रा।
जाति में कैसे उदय हो यह उदार परम्परा ?
जबकि अब तक इस दिशा में कुछ किया तुमने नहीं।
प्रेम-किरणोंके बिना पंकज, नहीं खिलते कहीं॥१८॥
चांद, अर्जुन, तेज, लीडर, विश्वमित्र, सरस्वती।
आप ने भी नाम तो इनका सुना होगा कभी ?
क्या सभी ये पत्र घाटे से निकलते आज हैं ?
क्या दया के आप जैसे यह सभी मुहताज हैं॥?१९॥
इसलिये इन जैन-पत्रों को संभलना चाहिये।
जिन्दगी या मौत इनमें एक चुनना चाहिये॥
दूसरों की टांग पर चलना न कोई रीति है।
पत्र जग में ध्रुव विफलता की यही तो नीति है॥२०॥

सम्पादक

पत्र सम्पादन करना सरल,
नहीं है, ये है, दुस्तर काम।
जरा से हेर-फेर में विफल,
और होना पड़ता बदनाम॥ १॥

सतत उत्तरदायित्व विशेष,
इसी पर रहता है सर्वत्र।
मंजु-उन्नत-अवनत बेकाम,
बनाना कर में इसके पत्र ॥ २ ॥
जोश-जीवन जनता में आग;
फूँक सकता विद्रोह प्रचण्ड।
सरल तम उन्नत पथ निर्विघ्न,
दिखाता रहता बन मार्तण्ड ॥ ३ ॥
नीति-विज्ञान-प्रेम का पाठ,
पढ़ा देता है समय विचार।
रूढ़ि आबद्ध जाति का यही,
स्वयं करता है ध्रौव्य सुधार ॥ ४ ॥
प्रकृति परिवर्तन का परिज्ञान,
देश की और दशा से विज्ञ।
सर्वदा रहता है स्वच्छन्द,
प्रवर पण्डित अद्भुत नीतिज्ञ ॥ ५ ॥
नहीं पर आज हमारे यहां,
बहुत उन्नत सम्पादक मण्डल।
अधिक तर हैं अदूर दर्शी,
और अभिमानी उच्छृङ्खल ॥ ६ ॥
जानते श्रेष्ठ न लेखन कला,
और रखते न समय का ध्यान।

नहीं इनके प्रिय हैं परमार्थ,
स्वार्थ साधन में खूब महान ॥ ७ ॥
भला तब हो कैसे उद्धार,
विकट यह आज समस्या बड़ी ।
बन्धनों में निश्चय यह जाति,
इसी से हाय ! अभी तक है पड़ी ॥ ८ ॥

लेखक

मिला कुछ काम नहीं तो ठीक,
अरे ! लेखक बनना है सरल ।
इसी से आज जाति में व्यर्थ,
बढ़ रहे हैं लेखक प्रतिपल ॥ १ ॥
वाक्य रचना आवे या नहीं,
विषय का हो न स्पष्टीकरण ।
कहाँ हो अन्त और किस तरह,
लेख का करना है अवतरण ॥ २ ॥
नहीं कुछ भी है इसका ज्ञान,
न देखा लेखों का साहित्य ।
ग्रन्थ-अवलोकन में रुचि नहीं,
नहीं है प्रकृति-दत्त पाडित्य ॥ ३ ॥
किन्तु लेखक बनकर अविराम,
चलाते हैं नित कलम-कुठार ।

नहीं होगा इनसे कुछ कभी,
देश का अथवा जाति सुधार ॥ ४ ॥

कवि

छन्द का इनको तनिक न ध्यान,
अलंकारों की फिर क्या बात।
कल्पना हीन हृदय को घोंट,
किया करते भावों का घात ॥ १ ॥
तुकों में ही इनकी गति-प्रगति,
और ये हैं भारी अहं मन्य।
असत साहित्य बनाकर नित्य,
समझते हैं अपने को धन्य ॥ २ ॥
रखो विश्वास न होगा कभी,
विश्व में किञ्चित ऐसे नाम।
साथ में इनके और समाज,
व्यर्थ हो जायेगा बदनाम ॥ ३ ॥
यदपि है कवि बनने की चाह,
बनो पहिले प्रतिभा सम्पन्न।
और यह भी बिल्कुल है सत्य,
सुकवि तो होते हैं उत्पन्न ॥ ४ ॥

पत्र-पाठक

(मुफ्त ख़ोर)

आज कल अख़बार पढ़ने के बहुत शौकीन हैं ।
जब इन्हें देखो तभी यह पत्र में तल्लीन हैं ॥
किन्तु सुन कर नाम पैसों का भड़क जाते बड़ा ।
लाल कपड़ा देख कर मानो कि बैल विदक पड़ा ॥ १ ॥
मुफ्त के इनको हमेशा पत्र मिलना चाहिये ।
ज़ेब से पर एक भी पाई न हिलना चाहिये ॥
यह अगर सीधे तरह से मुफ्त पत्र न पायँगे ।
तो नमूने ही विभिन्न उपाय से मंगवायेंगे ॥ २ ॥
यह बहाने ग्राहकी के सर्वथा झूठे मिला ।
नित किसी न किसी तरह जारी रखेंगे सिलसिला ॥
यदि कई अंकादि के पश्चात् वी० पी० आयगी ।
एक दम इन्कार लिख वापिस करा दी जायगी ॥ ३ ॥
एक-दो फिर तीन क्रमशः और पैर बढ़ायंगे ।
इस तरह यह नित्य उल्लू सिद्ध करते जायंगे ॥
अस्तु इन नर पुङ्गवों का जिक्र जाने दीजिये ।
अब ज़रा कुछ फैशनेविल पाठकों को लीजिये ॥ ४ ॥

फैशनेबिल

सिर्फ पन्ने लौटना इनको अतीव पसन्द है ।
लेख के अध्ययन में आता नहीं आनन्द है ॥

चित्र वाली पत्रिकाओं में इन्हें श्रद्धान है ।
पत्र के गाम्भीर्य की इनको न कुछ पहिचान है ॥ १ ॥
ये सिनेमा के नये साहित्य रस के मित्र हैं ।
प्रिय इन्हें सित-चुलबुली अभिनेत्रियों के चित्र हैं ॥
"पज़िल" और पहेलियों में विश्व भर से दक्ष हैं ।
मानिये सारे लंपटी ज्ञान के अध्यक्ष हैं ॥ २ ॥
यह कहानी पर उमड़ कर बेहताशा टूटते ।
विज्ञता के लेख में स्वयमेव छक्के छूटते ॥
नीति-ज्ञान-विवेक-बुद्धि समाज पर पढ़ते नहीं ।
व्यर्थ थकने के लिये इस शैल पर चढ़ते नहीं ॥ ३ ॥
किन्तु इन विज्ञापनों पर दृष्टि नित रखते डटी ।
वीर्य-वर्द्धक-"सिद्ध मकरध्वज" तथा 'स्तम्भनवटी' ।
चाहिये 'सन्तान-निग्रह' की इन्हें नित गोलियाँ ।
पढ़ इन्हें विज्ञापकों की भर रहे हैं झोलियाँ ॥ ४ ॥

धनाढ्य

कह चुके हम मुफ्तखोर व फैशनेबिल के लिये ।
अब जरा अपने धनाढ्य उदार पाठक देखिये ॥
पत्र क्या है-किसलिये है-कुछ न इसका ज्ञान है ।
किन्तु चन्दा दे रहे केवल समझ कर दान है ॥ १ ॥
पत्र की उपयोगिता को यह कदापि न मानते ।
पत्र पढ़ने को दिमाग़ ख़राब करना जानते ॥

पैकिटों को हाथ तक से भी न ये छूते कभी।
एक दिन वह बन्द घूरे पर विगल जाते सभी ॥ २ ॥
या कि आते दीमकों के काम खाने के लिये।
या मिठाई की टुकरियों में बिछाने के लिये ॥
अति हुआ तो बालकों की जिल्द पर चढ़वा दिये।
या नया जूता लपेट-लपाट कर रखवा दिये ॥ ३ ॥
चेतिये इस विधि न हो सकता कभी उत्थान है।
यह समाजिक-धार्मिक-नैतिक महा अवसान है ॥
आज भीषण क्रान्ति का नव हो रहा आह्वान है।
आज पत्र-पठन महा उन्नति मई सोपान है ॥ ४ ॥

पुस्तक-प्रकाशक

हर्ष है यह जाति मध्य प्रकाशकों का ढेर है।
किन्तु इसके नाम पर जो हो रहा अन्धेर है ॥
पूर्ण वर्णन और चित्रण की व्यवस्था व्यर्थ है।
इस विषय में सत्य ही कवि सर्वथा असमर्थ है ॥ १ ॥
भय जमाने के लिये यह जैन वाणी भक्त हैं।
किन्तु इसकी ओट में कलदार के अनुरक्त हैं ॥
यह नये-उन्नत-प्रकाशन को सदा झकझोरते।
दान और सहायता पर खूब माल बटोरते ॥ २ ॥

आप इनकी पुस्तकों का मूल्य जितना पायँगे।
विश्व भर में भी कहीं दृग में न इतने आयँगे॥
एक के "छै" 'आठ' लिखने में नहीं मुख मोड़ते।
कीमतों में यह रिकार्ड समस्त जग का तोड़ते॥ ३॥
घोषणा हर मास यह पुस्तक लुटाने की करें।
"लूटिये—मत चूकिये" से विश्व को सिर पर धरें॥
लूटिये की आड़ में यह खूब जग को लूटते।
स्वार्थ में सम्भव उपाय कभी न इनसे छूटते॥ ४॥
यह अवाञ्छित चीत-पोत प्रकार में नित जूझते।
आर्ट-फाइन-गेट-अप इनको कदापि न सूझते॥
एक भी समयोपयोगी मांग ढंग न जानते।
सिर्फ भटियापन लुटेरों की कला पहिचानते॥ ५॥
जैन-जग अब तक पुरानी लीक पर जो दीखता।
सर्व क्षेत्रों में चमकने के उपाय न सीखता॥
छा रहा इस जाति में नित अंधकार अपार है।
सत्य इसके यह प्रकाशक वृन्द जिम्मेदार हैं॥ ६॥

समालोचक

जाति के साहित्य को गन्दा कभी होने न दे।
पुष्प तरु के मूल में विष बीज जो बोने न दे॥
पूर्णतः साहित्य को अपने निरीक्षण में रखे।
वृद्धि जो करता रहे विद्वान्-साहित्यक सखे!॥ १॥

एक क्षण साहित्य गति को सुस्त जो रहने न दे।
जो पतन के मार्ग पर साहित्य को बहने न दे॥
शूल जो जमने न दे साहित्य के उद्यान में।
हो विमल प्रतिभा कि जिसकी पूर्ण अनुसंधान में॥ २॥
पक्षपातान्याय मुँह देखी कभी करता न हो।
शुद्ध चित्रण सत्य भाषण में कभी डरता न हो॥
पर यहाँ पर इस दिशा में घोर वण्टाढार है।
सिर्फ सम्पादक यहाँ इस क्षेत्र के सरदार हैं॥ ३॥
हर विषय के एक मात्र यही समालोचक बने।
अन्य बन सकते समालोचक न इनके सामने॥
किस विषय में मूढ़ हैं इसकी इन्हें चिन्ता नहीं।
लेखनी वे रोक-टोक चलायँगे ये शक कहीं॥ ४॥
लेख में खुद आप तो व्याकरण की त्रुटियाँ करे।
पर न ये व्याकरण की आलोचनाओं से डरे॥
है अभिज्ञ गणित व वैद्यक, काव्य-रस, इतिहास से।
किन्तु उस पर राय दे देंगे बड़े उल्लास से॥ ५॥
जानते तक भी नहीं हैं क्या बला कविता-कला।
पर अवश्य क़लम कुल्हाड़ा देयँगे उस पर चला॥
छन्द-पिंगल हीन को ये अति ललित बतलायँगे।
दोष मुक्त किताब पर अति तुच्छ राय बनायँगे॥ ६॥
जिस विषय को जानना तो क्या समझते तक नहीं।
आप कहिये राय यह क्या ठीक दे सकते कहीं?

किन्तु सिर्फ प्रधानता जिसमें भरी हो नाम की।
सोचिये ऐसी भला आलोचना किस काम की ॥ ७ ॥
मानिये अभिशाप है इनको समझना सोचना।
देखिये इस ढङ्ग की होती यहाँ आलोचना ॥
विज्ञ लेखक योग्य है व किताब संग्रहणीय है।
मूल्य ज्यादा है छपाई गेट-अप कमनीय है ॥ ८ ॥
अति हुआ तो दे दिये ऐसे कुछेक प्रमाण भी।
जो बिना पुस्तक पढ़े ही लिख सकेंगे आप भी ॥
मित्र लेखक को प्रशंसा से बहुत देंगे फुला।
अन्य को झकझोर लिखना तक उसे देंगे भुला ॥ ९ ॥
हर विषय के आप ही विद्वान ये बन जायँगे।
कुछ इन्हें चिन्ता न, यदि मुँह तोड़ मुँहकी खायँगे ॥
विश्व में आलोचना का है महान नियम यही।
पुस्तकों पर राय देंगे उस विषय के विज्ञ ही ॥ १० ॥
पुस्तकें सम्पादकों ने पास यदि विद्वान के।
भेज दी यदि उस विषय का पूर्ण उसको जानके ॥
उस विषय में विज्ञ अपना देखता कम ज्ञान है।
शीघ्र लौटाता उन्हें इसके अनेक प्रमाण है ॥ ११ ॥
अल्पता स्वीकार करना ज्ञान की पहिचान है।
अज्ञता की विज्ञता पाती सदा अपमान है ॥
ज्ञान वह किस काम का अपमान जो अपना करे।
ज्ञान का वरदान यह अज्ञान मानव का हरे ॥ १२ ॥

पर यहाँ पर किस तरह यह बात होने पायगी।
विज्ञ-जग में आज जड़ से नाक जो कट जायगी॥
किस लिये अल्पज्ञता स्वीकार हम करलें भला।
क्या हमारे पूर्वजों में थी न आलोचक कला॥१२॥

कुरीतियाँ

तुम्हारे ही कारण से आज,
जाति हो रही क्षीण-निष्प्राण।
समुन्नत तो होना है दूर,
नहीं कर सकी आज तक त्राण॥ १॥

बन्धनों ने कर दी जर-जरित,
तुम्हारे जो हैं कुटिल-कराल।
चेत सकती है किञ्चित नहीं,
तुम्हारा फैला ऐसा जाल॥ २॥

मूँद रक्खे हैं तुमने नयन,
झौंक कर उसमें विकृत-धूल।
जाति का मिलना है दुश्वार,
दूर है अभी बहुत कुछ कूल॥ ३॥

बिछाये तुमने पथ में तीक्ष्ण,
कंटकों के वे संकुल-झाड़।
मोहनी फूँक रही हो और,
घेर ले जिससे तण्डा-गाढ़॥ ४॥

छीन तो लिये सभी कुछ रत्न,
नहीं कुछ पास रहा है हाय।
कर दिया सबको कोरमकार,
विवश हैं हर प्रकार निरुपाय ॥ ५ ॥
किन्तु अब नहीं चलेगी पोल,
प्रकट हो गया सुखद विज्ञान।
हटो भागो हम से दूर,
हमारा भी होगा उत्थान ॥ ६ ॥

विवाह

तुम्हारा है उद्देश्य महान्,
तुम्हारा है पावन संस्कार।
तुम्हारे अंचल में आविद्ध,
इसी से है सारा संसार ॥
तुम्हीं जीवन-नौका के रम्य,
सुदृढ़-तल हो सुन्दर हो कूल।
तुम्हारे बिना अधिकतर मनुज,
उड़ा देते सयम की धूल ॥ २ ॥
भिन्न दो हृदयों का तुम सद्म,
बना देते हो एक समान।
प्रेम का मंजुल-पुट दे-मोद,
तुम्हीं भर देते हो अम्लान ॥ ३ ॥

किन्तु उफ ! आज स्वार्थ ने खूब,
तुम्हारा विकृत-किया स्वरूप।
बाल-वृद्धों का कर सम्मिलन,
बना रक्खा है तुम्हें कुरूप ॥ ४ ॥
भोगने होते जिससे आज,
दुःख भीषण तम हा ! दिन-रात।
बढ़ रहे हैं इस ही से पाप,
और होते हैं नित उत्पात ॥ ५ ॥
सदा परिवर्तन यदि कुछ नहीं,
तुम्हारे अन्दर हुआ विवाह।
सभी चौपट होगी यह शीघ्र,
जाति की उज्ज्वलता सब आह ! ॥ ६ ॥

बाल-विवाह

हे जैन बान्धवो याद रखो, तुम अपना नाम डुबाते हो।
करते हो खोटे कर्म आप, बूढ़ों का नाम लजाते हो ॥ १ ॥
लो सुनो कान खोलो अपने, मैं गलती तुम्हें बताता हूँ।
जिस कारण पतित बने जग में, वह कारण तुम्हें जताता हूं ॥ २ ॥
दो नन्हीं-नन्हीं कलियों को, बरबाद किया कर बाल-विवाह।
हा ! नाश किया उनके जीवन का, रख करके नाती की चाह ॥ ३ ॥
यह फूल अधखिले आखिर दोनों, आंखों देखे ही मुरझाये।
हा ! व्यर्थ गये अफसोस यही, दुनियाँ में नहीं महक पाये ॥ ४ ॥

देश-जाति की आशाओं पर, पानी तुमने फेर दिया।
डूबे स्वयं समाज डुबोकर, खूब जाति से बैर लिया ॥ ५ ॥
इसीलिये है विनय यही, यह घातक प्रथा हटाओ तुम।
देश जाति उत्थान हेतु यह, अनुपम त्याग दिखाओ तुम ॥ ६ ॥

वृद्ध-विवाह

देख यह अवनति दशा मुख से निकलती आह है।
नष्ट हमको कर रहा यह दुष्ट वृद्ध-विवाह है ॥
क्यों नहीं हम आज इस नाशक प्रथा को रोकते।
बालिकाएं क्यों पतन की भट्टियों में झोंकते ? ॥ १ ॥
जो कलंक किसी तरह हमको नहीं स्वीकार है।
विज्ञवर ! यह तो उसी व्यभिचार का गुरु-द्वार है ॥
हम क्रियाएं तो बड़े उत्साह युक्त संभालते।
किन्तु उनके कारणों पर दिव्य-दृष्टि न डालते ॥ २ ॥
नित्य करती मृत्यु जिसका द्वार पर आह्वान है।
हम उन्हीं पर आज कलियाँ कर रहे बलिदान हैं ॥
कुछ समय के बाद ही वह वृद्ध नर्क सिधारते।
तब वधू की जिन्दगी वैधव्य से सहारते ॥ ३ ॥
अन्त में परिणाम जो होते उन्हें सब जानते।
किन्तु हम कर्त्तव्य अब तक भी नहीं पहिचानते ॥
शीघ्र हमको जाति का जीवन बचाना चाहिये।
राक्षसी इन दुष्प्रथाओं को मिटाना चाहिये ॥ ४ ॥

अनमेल-विवाह

क्या ऊंट बिल्ली की सुघड़ जोड़ी मिलाते व्याह में।
होता पतन है अन्त में जलते रहें उर दाह में॥
हो सर्व सिद्धि-समृद्धि शाली किन्तु सद्गुण हीन हो।
पर व्याहते कन्या उसे ही हीन हो या दीन हो॥ १॥

दहेज

यों तो सदा से ही अनेकों दुष्प्रथायें हैं यहाँ।
परिणाम में जिसके निरन्तर भोगते हैं दुख महाँ॥
गुण दोष कब अवलोकते ऐसे प्रबल अन्धे बने।
विध्वंसकारी दुष्प्रथाओंमें अधिकतर हैं सने॥ १॥
बाजार में दो-चार पैसे का कहीं लेते घड़ा।
निज शक्ति भर उसके लिये कौशल्य दिखलाते बड़ा॥
लेकिन जहाँ आजन्म का होता विकट सम्बन्ध है।
वित्तैषणा वश वह मनुज बनता वहाँ क्यों अन्ध है॥ २॥
बिकती सुकन्यायें कहीं बिकते कहीं पर वर अहो।
उद्धार फिर इस जाति का होगा सहज कैसे कहो?
हा! आज अर्थाभाव में कितने कुँवारे रह रहे।
अपनी जवानी की विकट तर वेदना नित सह रहे॥ ३॥
यह दुष्प्रथा धर राक्षसी का रूप फिरती है यहाँ।
सम्पन्न घर को भी सकल कंगाल करती है यहाँ॥

हा ! मान विक्रय वस्तु कन्या को बढ़ाते हैं कभी।
सब योग्य धन इसको मिले सुत को पढ़ाते हैं सभी ॥ ४ ॥
संसार के सब काम सम्प्रति अर्थ के ही अर्थ हैं।
इस लक्ष्य से सन्तान के प्रति हा ! अनेक अनर्थ हैं ॥
शुभ प्रेम का आदर्श क्या रहता कहीं सम्पत्ति में।
इस बात का कुछ ध्यान धरिये आप अपने चित्त में ॥ ५ ॥

कन्या-विक्रय

अब मनुज भी बिकने लगे हैं हा ! हमारी ख्याति में ॥
यह खूब सौदा चल पड़ा है लड़कियोंकी जाति में।
ये भेड़ हैं या बकरियाँ प्रभु आप ही बतलाइये ?
उत्कर्ष के रवि-राज्य में रवि को पुनः चमकाइये ॥ १ ॥
मुर्दा फरोशी बन्द की कानून से सरकार ने।
लेकिन यहाँ सुकुमारियाँ बिकने लगीं बाजार में ॥
हो भर रही थैली रुपों की जिस किसी के पास में।
तो रख सकेगा बस वहीं सुर-सुन्दरी सहवास में ॥ २ ॥
चाहे जरा का केन्द्र हो या वह भले तन हीन हो।
बस चाहिये इतना कि वह धन से कदापि न दीन हो ॥
भोली सुता को बेंच कर फिर बन गये धनवान है।
हे जैनियो ! यह रूढ़ि तज दो घोर अवगुण खान है ॥ ३ ॥

व्यर्थ व्यय

कथ कौन सकता है हमारे व्यर्थ के व्यय की कथा।
वह दूसरों से भी कहीं उन्नति शिखर पर है यथा॥
सब तुच्छ कामों में हमारा द्रव्य पानी-सा बहे।
इस रोग से हम रुग्ण हैं पर शान के शानी रहे॥
तिगुना तथा तेरह गुना हम खर्च करते व्यर्थ हैं।
फिर कह रहे अभिमान युत सफलित हमारा अर्थ है॥
सत्कार्य में निज द्रव्य का देते नहीं कुछ अंश हैं।
निज नाम के ही वास्ते करते उसे विध्वंस हैं॥ २॥
जिस कार्य के उन्नत बनाने के लिये धन चाहिये।
उसके लिये करते विदित धन हैं मगर मन चाहिये॥
बिपरीत पथ पर चल रहे हैं धनिक जैन समाज के।
उनको सुहाते ही नहीं सिद्धान्त हित कर आज के॥ ३॥

अन्ध श्रद्धा

बुद्धि भई मन्द अन्ध के समान भये हम,
हेय उपादेय कछु सोचें न विचारते।
भये मति हीन न विवेक रहा पास कुछ,
बनते प्रवीन तो भी शान हैं बघारते॥
भूत व भविष्य की विचारे नहीं कोई बात,
होगा परिणाम कैसा इसको न धारते।

रूढ़ियों को दास करें सत्य का विकास कैसे,
अन्धक श्रद्धान "प्रेम" ज्ञान को विसारते ॥ १॥

मृत्यु भोज

यह खूब प्यारा हो रहा है मृत्यु-भोज समाज को।
यह हेय है धिक्कार है उसके निमित्त अनाज को॥
पर, कौन सुनता है तुम्हारे इस बड़े उपदेश को।
जब जा रहे हैं मानने मिथ्यात्व के आदेश को॥ १॥

परिवार बैठा रो रहा है हाय! आरत नाद में।
उस वक्त जीमन जीमते धिक्कार ऐसे स्वाद में॥
नुक्ती कचौड़ी और मोदक खा रहे हैं मोद में।
विधवा बहाती अश्रु बालक रो रहा है गोद में॥ २॥

इससे मिली क्या सान्त्वना मृत्यात्मा के वास्ते?
घर के मनुज भी लग गये क्या शान्तता के रास्ते?॥
इस भोज से कुछ प्रेम भी प्रगटित नहीं होता कहीं।
दुख ही सदा बढ़ता रहे बरबाद घर होता वही॥ ३॥

यह शास्त्र की सम्मति नहीं आचार्य की वाणी नहीं।
इसका समर्थक जो बना वह धर्म का ज्ञानी नहीं॥
घर सैकड़ों बरबाद इससे हो रहे हैं आज के।
पर तोड़ते इसको नहीं सर पंच जैन समाज के॥ ४॥

सभाएँ

सभाएँ है क्या ? बस खिलवाड़,
पास कर देती हैं प्रस्ताव ।
कार्य कुछ करतीं धरती नहीं,
नहीं रहता फिर इनमें ताव ॥ १ ॥
झाड़ती हैं स्पीचें डाट,
उठा लेंगी मानो आकाश ।
किन्तु होता है कुछ भी नहीं,
विफल जाते हैं सभी प्रयास ॥ २ ॥
संगठन है न शक्ति है पास,
उड़ाती हैं पर अपनी तान ।
मग्न हैं सब अपने में आप,
गा रही हैं अपने ही गान ॥ ३ ॥
मद्दा है इनमें कोई आल,
इण्डियन अपटूडेट जनाब ।
सभी का होता रहता नित्य,
नया एडीसन नया चुनाव ॥ ४ ॥
किसी का कोई सेक्रेटरी,
किसी का कोई चेयरमैन ॥
सभी हैं बिल्कुल कोरमकार,
जाति हित करता कोई है, न ॥ ५ ॥

साल में अधिवेशन इक बार,
कर लिया अलम हुआ प्रोग्राम।
वर्ष भर को ले लेना मौन,
नहीं रहता फिर कोई काम ॥ ६ ॥
यही बस, आज हो रहा ढङ्ग,
दिखाती कुछ दिन से ये रंग।
इसी से तो करते हैं लोग,
खूब खुल खुल कर इनका व्यङ्ग ॥ ७ ॥

सभापति

बन गये, अब क्या करना काम,
नाम हो गया सभापति आप।
भले ही सभा भाड़ में जाय,
सहे अथवा दुष्कर संताप ॥ १ ॥
इन्हें तो कुछ भी मतलब नहीं,
नहीं है उसका कुछ भी ध्यान।
सभा जीवित है या मृत प्राय,
मान पाती है या अपमान ॥ २ ॥
काम करती भी है या नहीं,
व्यर्थ या बाँध रही है तूल।
आय-व्यय है कुछ भी या नहीं,
और क्या क्या हैं उसके रूल ॥ ३ ॥

भला इनको इतना भी नहीं,
पता है तब कैसा अधिपत्य।
लगन अन्तस्थल में कुछ नहीं,
नाम के लिये सभी ये कृत्य ॥ ४ ॥

सेक्रेटरी (मन्त्री)

सभा के मन्त्रीजी की आप,
विज्ञवर कुछ न पूछिये बात।
इलेक्शन के दिन जगते रहें,
विचारें आधी-आधी रात ॥ १ ॥
किन्तु मन्त्री चुनने के बाद,
कभी आती न काम की याद।
मेज पर पड़े हुए प्रस्ताव,
कर रही है दीमक बरबाद ॥ २ ॥
बिना कुछ करे-धरे ही नित्य,
हो रहा मन्त्रीजी का नाम।
सभा आफिस में 'पेड क्लर्क',
कर रहा पत्रोत्तर का काम ॥ ३ ॥
सूचनाएँ जो छपती नित्य,
नाम से मन्त्री के छविमान।
स्वयम् मन्त्रीजी को भी खबर,
न उसकी होती कानोंकान ॥ ४ ॥

सिर्फ अधिवेशन आया देख,
फट-फटा लेते हैं कुछ कान।
और फिर वही पूर्व की भांति,
युद्ध-थल हो जाता सुनसान ॥ ५ ॥

किसी पिट्टू पण्डित को गांठ,
कर समय अपना भी बेकार।
बनाली गई नवीन रिपोर्ट,
पुरानी का लेकर आधार ॥ ६ ॥

और सब मन्त्रीजी का नाम,
करें चपरासी और क्लर्क।
सहज यों होता गहरे मध्य,
संस्थाओं का बेड़ा गर्क ॥ ७ ॥

संस्था के धन व्यय के हेतु,
कभी बनते न किफ़ायत शार।
भेजते बात-बात में नित्य,
एक दम नौ आने का तार ॥ ८ ॥

विना पूरे तांगे के आप,
समझते हैं अपना अपमान।
खर्च की क्या चिन्ता है इन्हें,
संस्था है काफी धनवान् ॥ ९ ॥

यदि कहीं जाना है अन्यत्र,
हिलायँगे न कभी निज हाथ।

जरूरी है सेवा के लिये,
सभा का नौकर इनके साथ ॥१०॥
संस्था या समाज के हेतु,
सतत करते जो यत्न अनेक।
मिलेंगे ऐसे मन्त्री अल्प,
और वह मुश्किलसे दो एक ॥११॥

सभा के कार्यकर्ता

भाषण देकर आप बनाते हैं श्रोतों को।
"हित कर है यह सभा" सुझाते हैं श्रोतों को ॥१॥
इसकी आर्थिक दशा बहुत ही गिरी हुई है।
जीवित तो है किन्तु धन बिना मरी हुई है ॥२॥
कोई भी हो कार्य तरक्की तब वह पाता।
उस का रक्षक कोष द्रव्य मे भरा दिखाता ॥३॥
उन्नत पथ की मुख्य प्रदर्शक यह कहलाती।
लेकिन धन के बिना नही आगे बढ़ पाती ॥४॥
अतः प्राप्त सहयोग आपका भी हो जाये।
तो सदैव के लिये अमर बन यह लहराये ॥५॥
यह तो है स्वीकार समय नाजुक आया है।
लेकिन करना दान श्रेष्ठतर बतलाया है ॥६॥

ऐसा दे उपदेश बात चन्दे की लायें ।
चतुराई के साथ सभा में द्रव्य कमायें ॥७॥
आमद अथवा खर्च नहीं लिख कर प्रगटायें ।
जो कुछ कहता उसे—लाल आँखें दिखलायें ॥८॥
उस धन से व्यापार खुशी से आप चलायें ।
दिल के बने उदार-कहें हम उसे बढ़ायें ॥९॥
देते नहीं हिसाब—मांगते कलह मचायें ।
गोल-मालमें "गुणी" प्रशंसा गीत सुहायें ॥१०॥
ऐसे भी हैं बहुत सभा का हित दरशावें ।
बन कर कोषाध्यक्ष आप ही उसे उड़ावें ॥११॥
रक्षक भक्षक बनें उक्ति नीतिज्ञ बतावें ।
कैसे हो उद्धार सत्य को जब ठुकरावें ॥१२॥

आनरेरी-पद

आनरेरी पद अनूपम त्याग का परिणाम है ।
त्याग या बलिदान इसका दूसरा शुभ नाम है ॥
स्वार्थ से उठ कर स्वतः जो लोक सेवा में सने ।
उपकरण यह उन महा नर-पुंगवों के हित बनें ॥ १ ॥
किन्तु अब यह ऑनरेरी पद भयङ्कर तम बना ।
मानिये गिर कर सुगन्धित पुष्प कीचड़ में सना ॥
ठीक है यह भी कि भू-मण्डल न होता एक सा ।
किन्तु अब इस 'राहु' ने अधिकांश दुनियां को ग्रसा ॥२॥

आज तो यह पद हमारी जाति का अभिशाप है।
मानिये प्रगटित हुआ इस रूप में गत् पाप है॥
एक छत्र विशाल इसका हर तरफ साम्राज है।
आज जिसके देखिये सिर पर रखा यह ताज है॥ ३॥
संस्थाएं तो सरकतीं ही नहीं इसके बिना।
आप ऐसे नाम थोड़े भी नहीं सकते गिना॥
संस्था अधिकारियों का यह महा शृंगार है।
किन्तु वास्तव में यही अन्धेर का भण्डार है॥ ४॥
वस्तुतः अब ऑनरेरी उन पदों का नाम है।
जो बिना वेतन चलाते संस्था का काम है॥
किन्तु अब यह स्वार्थ साधन का समुन्नत हेतु है।
हर विषय में झुक रहा हा! जैनियों का केतु है॥ ५॥
इस विषय को अति समझने के लिये यह मानिये।
संस्थाओं की रिपोर्टें ध्यान पूर्वक छानिये॥
सरसरे दृग खर्च की तफ़सील पर दौड़ाइये।
और फिर मेरे कथन का पूर्ण उत्तर पाइये॥ ६॥
खर्च में अधिकारियों के कुछ नहीं होगा कहीं।
एक पाई भी कभी जैसे कि यह लेते नहीं॥
हम समझते धन्य ये तो धर्म का अवतार है।
कर रहे यह जाति का मानो महा उपकार है॥ ७॥
किन्तु यह उलझी समस्या घोर भ्रम में डालती।
संस्था फिर किस तरह अधिकारियों को पालती॥

जन्म के नंगे कि जो व्यापार तक न किया कभी।
बाप दादों ने निजी कौड़ी न छोड़ी एक भी ॥ ८ ॥
आज उन पर चल-अचल सम्पति सरो सामान है।
ऑनरेरी बन गये 'बैंकर' तथा धनवान हैं ॥
आपको सन्देह है पर आप सह सकते नहीं।
ऑनरेरी क्योंकि कोई बात सह सकते नहीं ॥ ९ ॥
सोचिये तो यह भला कैसा विकट सम्मान है।
मानिये यह सभ्यता की मौत का सामान है ॥
ऑनरेरी मामलों में लब हिला सकते नहीं।
इस किफायत से विजय क्या सत्य पा सकते कहीं ॥१०॥
आप यदि यह चाहते हैं संस्था फूले-फले।
आर्थिक कठिनाइयों में पड़ न असमय में गले ॥
तो सवेतन कार्यकर्त्ता की नियुक्ति कराइये।
ऑनरेरी से समाजिक पिण्ड शीघ्र छुड़ाइये ॥११॥
ऑनरेरी मानिये "फैसिज्म" का अवतार है।
ऑनरेरी हर विषय में 'फाइनल' मुख्तार है ॥
ऑनरेरी घोर मनमाना विशेषऽधिकार है।
जाति के हित मानिये यह पद पतन का द्वार है ॥१२॥

उपदेशक

लिया लोटा चल पड़े जनाब,
माँगने में हैं ये हुशियार।

नहीं देना आता उपदेश,
कहाते उपदेशक सरदार ॥ १ ॥
किया चन्दा जो कुछ एकत्र,
लिया वेतन में आधा स्वयम् ।
कहा करते तो भी कुछ अधिक,
बढ़ादें ये है वेतन कम ॥ २ ॥
नहीं इनसे होता है काम,
अड़ंगा उन्नति में है एक ।
व्यर्थ पैसा जाता बरबाद,
जाति ने खूब लिया है देख ॥ ३ ॥

भाषण-दाता

मन में भरा कुछ और है पर कह रहे कुछ और हैं ।
करते प्रकट यह हर तरह हम ज्ञान के सिर मौर हैं ॥
अध्यात्मिकता-अध्ययन से यह न सजते लेष हैं ।
पर सजाते बाहिरी यह खूब भूषा-वेष हैं ॥ १ ॥
बनते नहीं कुछ आप यह उपदेश बनने का करें ।
"मिल" का पहिन खुद दूसरों में भाव खादी का भरें ॥
संयम-चरित्र-विवेक बल से सर्वथा रीते रहें ।
यह बार-बार बिना छना जल मंच पर पीते रहें ॥ २ ॥
विद्वान् केवल धर्म के हैं पर न चिन्ता कीजिये ।
घण्टों कला पर आप इनको खूब बुलवा लीजिये ॥
यह राजनैनिक एग्रिकलचर अर्थशास्त्र सुनायंगे ।
चिन्ता नहीं उपहास में यह तालियाँ बजवायंगे ॥ ३ ॥

निश्चित समय तक बोलने का यह न रखते ध्यान हैं।
घंटी तथा चेतावनी करती यदपि अपमान है।
जनता हमारी बात में ले भी रही कुछ चाव है।
होता नहीं इन पर कभी इसका विशेष प्रभाव है॥ ४॥

वक्ता

समझ कर यह अपना कर्त्तव्य,
दिया करते वक्ता उपदेश।
सुने चाहे कोई भी नहीं,
खतम होगया चलो उद्देश॥ १॥
पुराणों की गाथा-"गा" किया,
पुरातन बातों का आदेश।
भला इस समय बताओ कौन?
उठा सकता वे पहले क्लेश॥ २॥
समय का इनको नहीं विचार,
आज क्या निवल शक्ति हो रही।
पुराने भक्त नहीं अब रहे,
न वैसी भव्य-भक्ति अब रही॥ ३॥
चाहिये अब तो सतत नवीन,
सरल सुन्दर देना व्याख्यान।
तभी हो सकता है उत्थान,
तभी हो सकता है कल्यान॥ ४॥

श्रोता

इधर सुन लिया निकाला उधर,
झाड़ कर पल्ला घर को चले।
व्यर्थ क्या उपदेशों में धरा,
मढ़ी जाये क्यों आफत गले॥ १॥

कही—सुन ली इतना ही बहुत,
कर लिया है समझो यह कार्य।
मिला दी हाँ में हां बस व्यर्थ,
यही इनका है बस औदार्य॥ २॥

जरूरत नहीं किया कुछ जाय,
जमाना रंग बदल है रहा।
सत्य है कहते हैं यह ठीक,
समझ भर लिया आपका कहा॥ ३॥

जरा हंस कर कर दी वा-वाह,
और तालियां बजा दी ढेर।
खतम हो गया यहीं कर्त्तव्य,
तुम्हें क्या और चाहिये फेर॥ ४॥

यही श्रोताओं का संकल्प,
हो रहा दृढ़ तम सफल निदान।
नहीं हो सकता ऐसे कभी,
अनेकों सदियों तक उत्थान॥ ५॥

पञ्चायतें

कोई दिवस पंचायतों का विश्व मध्य महत्व था।
तब मानवों में भी परस्पर प्रेम था एकत्व था ॥
वे न करती थीं कभी भी न्यून विश्रुत सत्य का।
पथ पुष्ट वे करतीं न थीं अन्याय और असत्य का ॥१॥
हा! आज इन पंचायतों की हो रही है दुर्दशा।
इन पंचराजोंप र चढ़ा है पक्ष-मदिरा का नशा ॥
निष्पक्ष होके न्याय करना स्वप्न में आता नहीं।
हा! दीन मानव आज इनसे न्याय-नय पाता नहीं ॥२॥
बस स्वार्थ-साधन के लिये होती सकल पञ्चायतें।
अन्याय और स्वपक्ष युत हैं ये गरल पञ्चायतें ॥
जो कुछ घरों में बैठकर दो चार ने निश्चय किया।
उन ही विचारों को अहो पञ्चायतों में धर दिया ॥३॥
वे पुष्ट सहमा हो गये सम्बन्धियों की राय से।
कृत्कृत्य नित को हो गये पञ्चायतों के न्याय से ॥
बच जायँगे सौभाग्य से तलवार की खर-धार से।
पर बच नहीं सकते कभी पञ्चायतों की मार से ॥४॥
निष्पक्षता पञ्चायतें ठुकरा रही हैं अब सदा।
जाने प्रभो! पञ्चायतों के भाग्य में क्या है बदा ॥
पञ्चायतें तो आज कल की मान्यताएँ खो चुकीं।
अपने हृदय से सर्वथा सौजन्यताएँ धो चुकीं ॥५॥

पञ्च

पंच हैं इसीलिये तो खूब,
रचा करते हैं नित्य प्रपंच ।
पाप करने में हैं अभ्यस्त,
भद्रता दिखलाने में ढंच ॥ १ ॥

स्वयं करते हैं मायाचार,
दिखाते पर दीनों पर रोष ।
सताते हैं उनको ही सतत,
अभागे जो होते निर्दोष ॥ २ ॥

उनकी हां में हां जो लोग,
मिलाया करते हैं दिन-रात ।
उठाते हैं उनके प्रति सद्य,
स्वयं ही झूठे बस उत्पात ॥ ३ ॥

चलाते तब निशंक अचूक,
स्वनिर्मित बहिष्कार का अस्त्र ॥
मिटा देने को उनके लिये,
शक्ति को करते हैं एकत्र ॥ ४ ॥

विजय पर करते अपनी गर्व,
मनाते हैं फिर तो आनन्द ।
धर्म की ओट लिये अन्याय,
किया करते हैं हो स्वच्छन्द ॥ ५ ॥

हड़प कर जाते हैं ये लोग,
धर्म का द्रव्य क्योंकि हैं पंच।
नहीं कह सकता कोई कभी,
इन्हें भय है न इसी से रंच ॥ ६ ॥
इन्हीं के पापों ने तो जाति,
रसातल में ला पटकी आन।
अगर इनकी ही सत्ता रही,
नहीं हो सकता फिर कल्यान ॥ ७ ॥

बहिष्कार

कर दिया बहिष्कार ने आज,
जाति का जीवन ही बर्बाद।
फूँक घर नष्ट-भ्रष्ट कर दिये,
सलौने उफ़ ! थे जो आबाद ॥ १ ॥
छेद कर शूल तीक्ष्ण तन कुटिल,
जाति के अन्तर में अविराम।
बनाया दीन—हीन—निशक्त,
और उपहासनीय निष्काम ॥ २ ॥
डाल कर जंजीरें संकीर्ण,
जकड़ औदार्य लिया चहुं ओर।
दुखी अपने भ्राता पर सदा,
दिखाया इसने अपना जोर ॥ ३ ॥

किया है जाति पदों पर अरे,
कुल्हाड़ी सा निर्मम आघात।
नहीं भर सकता व्रण यह कभी,
दुःख देगा दारुण दिन-रात ॥ ४ ॥
मिला क्या इनका फल बस यही,
विश्व हाँ आज रहा है थूक।
काट अपने हाथों निज अङ्ग,
हृदय में उठा रहे हैं हूक ॥ ५ ॥

बहिष्कृत

बहिष्कृत थे बिलकुल लाचार,
जाति का था न तनिक भी नेह।
कहीं अब और न हो अपमान,
हृदय में था प्रतिपल सन्देह ॥ १ ॥
ताहने सुन-सुन कर थे विकल,
धर्म का बन्द हुआ था द्वार।
व्यर्थ में ही इन पर था दण्ड,
गालियाँ थीं प्रस्तुत थी मार ॥ २ ॥
प्रार्थना करने पर भी आह,
मिला इनको न जाति में स्थान।
दुखित होकर तब बेवश कहीं,
बनें ईसाई या मुसलमान ॥ ३ ॥

यहाँ उनको केवल यह मिला,
द्वेष—अप्रेम—घृणा—दुत्कार ।
पा रहे हैं वे जाकर वहाँ,
मोद—स्नेह—प्रेम—सत्कार ॥ ४ ॥
नहीं खुलती इस पर भी अभी,
जाति की आँखें हा ! हा !! हन्त ।
न जाने क्यों वेसुध होकर,
बुलाती जाती पास दुरन्त ॥ ५ ॥

अत्याचार

सुनो मुखियों के अत्याचार—
सबसे पहिले जिन मन्दिर के बन जाते सरकार ।
रख लेते हैं बड़ी खुशी से मन्दिर का भण्डार ॥
सुनो मुखियों के अत्याचार—
उसी समय से करते हैं अपने घर का व्यापार ।
लाभ उठाते खूब मुफ्त के बनते साहूकार ॥
सुनो मुखियों के अत्याचार—
भाई भतीजे घर कुटुम्ब के अथवा रिस्तेदार ।
उनको मन्दिरजी का रुपया देते आप उधार ॥
सुनो मुखियों के अत्याचार—
अगर जाति का कोई निर्धन आकर करे पुकार ।
उनके लिए शीघ्र मुखियाजी कर देते इन्कार ॥

सुनो मुखियों के अत्याचार—
कुछ दिन खाता बही दिखाकर देते साफ हिसाब।
उसके बाद मौन व्रत लेकर देते नहीं जवाब॥
सुनो मुखियों के अत्याचार—
चाहे पंच आँख दिखलावें चाहे कहें हजार।
देते नहीं हिसाब इसी से हो जाती तकरार॥
सुनो मुखियों के अत्याचार—
दबे चपों ने अपने दिल के दाबे सभी विचार।
कौन लड़े क्यों शिर फुड़वावे ? रहो मौन व्रत धार॥
सुनो मुखियों के अत्याचार—
किसी एक की एक न माने मुखिया आखिरकार।
मन्दिर का भण्डार करारा हड़प गये सरकार॥
सुनो मुखियों के अत्याचार—
मन्दिरजी हमने बनवाया हम उसके सरदार।
सोलह आना हक्क हमारा किसका है अधिकार॥
सुनो मुखियों के अत्याचार—
जब मन्दिर बनवाया हमने फिर किसका भण्डार।
तुम हो कौन हिसाब लिवैया जो करते तकरार॥
हमीं हैं उसके ठेकेदार—
बड़े आये बनकर सरदार—
सुनो मुखियों के अत्याचार॥

मन्दिर

कौन तुम देवालय हो वही,
नहीं हाँ नहीं झूठ यह बात।
तुम्हारे अन्दर अब तो नित्य,
हुआ करते उत्कट-उत्पात ॥ १ ॥

किसी दिन थे माना यह ठीक,
दीन कर लेता था निज त्राण।
तुम्हारी छाया ही से सदा,
स्वयं हो जाता था कल्याण ॥ २ ॥

हृदय खिल उठता था सानन्द,
क्लेश का हो जाता था अन्त।
प्रेम से सभी परस्पर बैठ,
भज लिया करते थे अरहन्त ॥ ३ ॥

किन्तु बन गये आज तुम हाय,
अरे झगड़ों के मूल-स्थान।
किया जाता है तुम में बैठ,
निर्बलों दुखियों का अपमान ॥ ४ ॥

तुम्हें होकर अञ्चल की ओट,
रोज होते हैं अत्याचार।
दिया जाता है उनको दण्ड,
स्वयं होते हैं जो लाचार ॥ ५ ॥

नहीं कर पाते दीन प्रवेश,
नहीं उनका कुछ है अधिकार।
अभागों की खातिर हैं बन्द,
तुम्हारे कञ्चन निर्मित द्वार ॥ ६ ॥

बन रहे हो तुम तो स्वयमेव,
उन्हीं की क्रीड़ा के आगार।
छुपे रुस्तम हैं वे जो लोग,
और करते हैं पापाचार ॥ ७ ॥

बताते तुमको निज सम्पत्ति,
निडर हो करते हास-विलास।
रचाते हैं वे उफ! सानन्द,
तुम्हारे अन्दर लीला-रास ॥ ८ ॥

समझते हैं तुमको कुछ नहीं,
न तुम पर है उनका विश्वास।
इसी से तो करते हैं मौज,
और देते दीनों को त्रास ॥ ९ ॥

रहे क्या! अब भी बोलो वही,
नहीं, तुम पाप मयी प्राकार।
इसी से करते चोर प्रवेश,
देव पर होता घोर प्रहार ॥ १० ॥

मूर्तियाँ

लक्ष प्राणी मात्र का बस एक आत्मोद्धार है।
मूर्तियाँ उस लक्ष का साकार तर आधार हैं॥
शून्यता में साधना होती नहीं दृग में खड़ी।
मूर्तियाँ निर्माण की शायद जरूरत यों पड़ी॥ १॥

किन्तु वह आधार अब हमको तमाशा हो रहा।
मूर्ति की अविनय कथाओं को न जा सकता कहा॥
लक्ष पाने की जगह उलटे अलक्ष हमीं बने।
दिव्य-दर्शक दृग हमारे आज जड़ता में सने॥ २॥

आज जैनी विश्व भर में सिर्फ ग्यारह लाख हैं।
किन्तु इनका ज्ञान जल कर हो गया सब राख है॥
मूर्तियाँ चालीस लाख विराजतीं इनके यहाँ।
एक पीछे चार का ऐसा रिकार्ड भला कहाँ?॥ ३॥

किन्तु इनको सब्र इस पर भी अभी आता नहीं।
जैनियों का मानिये इससे अलग नाता नहीं॥
यह अरक्षित हो भले ही म्यूजियम में जायँगी।
और सूने खण्डहरों में ठोकरें नित खायँगी॥ ४॥

यह हजारों क्षेत्र पर रक्षा रहित बिगड़ी पड़ीं।
पा रही हैं यह कहीं अलमारियों में गड़बड़ी॥
हैं अनेकों मन्दिरों में मूर्तियाँ ऐसी अभी।
उम्र भर जिनका कि प्रक्षालन न एक हुआ कभी॥ ५॥

भाग्य तक उनका सफाई के लिये जगता नहीं।
भूल कर भी हाथ उनकी धूल पर लगता नहीं॥
टूटने पर किन्तु निश्चय हाथ लग जाता इन्हें।
गोमती की धार में कोई सिरा आता इन्हें॥ ६॥
टूटना इनके लिये सौभाग्य का साम्राज्य है।
मान्यता इनके लिये मानो महा दुर्भाग्य है॥
भक्ति दर्शन में बनेंगे अग्रणी पहिले सभी।
भूल कर भी नाम फिर उनका नहीं लेंगे कभी॥ ७॥
प्रश्न नव-निर्माण का यद्यपि यहाँ पर आयगा।
तो हजारों का यहाँ चन्दा अभी हो जायगा॥
दानवीरों की नक़द थैली अभी खुल जायगी।
किन्तु पहिले की व्यवस्था में इन्हें यम आयगी॥ ८॥
जान को यह नित नई आफत बसाते जायँगे।
किन्तु पिछले झाड़ यह न कदापि भी सुलझायँगे॥
जो जगत में सभ्यता के पूर्ण पथ दर्शक रहे।
आज वह अज्ञानता की धार में गल कर बहे॥ ९॥

पूजा और पुजारि

पूजा का ढंग निराला, पूजक भी अजब निराले!
पूजन जिनेन्द्र की करते, पड़ते हैं उन्हें कसाले!॥ १॥

इसलिये पुजारी रख कर, पूजा का कार्य कराते !
तो भी अपवर्ग सदन की, वे सीधी टिकट कटाते ! ॥ २ ॥

उन पुजारियों की सुनलो, है कैसी अकथ कहानी !
पूजन कर्त्तव्य न जाने, है केवल तिलक निशानी ! ॥ ३ ॥

पतले छन्ने से छाने, पूजन करने का पानी !
यद्वा-तद्वा ही डालें, जल-आशय में जीवानी ! ॥ ४ ॥

सामग्री का संशोधन, करना कब इन्हें सुहावै !
देरी का बना बहाना, मन में आकुलता छावै ! ॥ ५ ॥

कङ्कड़-कोदों-मुड़दों की, क्या उसमें गिनती आवे !
जब वे-इन्द्रिय-ते-इन्द्रिय, जीवों को उसमें पावें । ॥ ६ ॥

डण्ठल समेत ही लोंगें, वा धोली सड़ी-सुपारी !
चिटकें सड़ियल गोले की, उलटी बेतुकी विदारीं ! ॥ ७ ॥

चन्दन में मिश्रित करदी, पीली कश्मीरी-केशर !
चाँवल तो नित रँगते हैं, पर रंगा नहीं आभ्यन्तर ! ॥ ८ ॥

सब सामग्री को धोकर, क्या सुन्दर थाल सजाया !
पुष्पों में नेवज मिश्रित, अक्षत में दीप मिलाया ! ॥ ९ ॥

प्रक्षाल के छन्ने काले, वे धुलते कभी नहीं हैं !
उनसे प्रतिमाएँ पोंछें, इसका न विधान कहीं है ! ॥ १० ॥

वह गन्धोदक शास्त्रों ने जिसकी महिमाएँ गाईं !
उसमें ये काले छन्ने क्या हाय ! अज्ञता छाई ! ॥ ११ ॥

काले प्रतिबिम्ब पड़े हैं वा जमी हुई है काई !
उनकी आसन के पीछे तक भी है नहीं सफाई ! ॥ १२ ॥

मूसों की बीट पड़ी है, रज ने निज सदन बनाया !
मकड़ी ने जाल बिछाकर, कूड़ा घर भवन बनाया ! ॥ १३ ॥
लेकिन प्रमाद के कारण उनको कुछ नहीं दिखाता !
बस, रूढ़ि वाद में उनको, सारा कर्त्तव्य सुहाता ! ॥ १४ ॥

पूजन दो-तीन जरूरी, आती बस उन्हें मुखागर !
पद तक न शुद्ध पढ़ते हैं, वनते हैं भक्त उजागर ! ॥ १५ ॥
श्रुत का 'सुत' शब्द उचारैं, गुरु का 'गुर' पढ़ें सदा ही !
निर का 'नर' वचन निकारैं, आगे बढ़ते न कदा ही ! ॥ १६ ॥

ऐसा अशुद्ध उच्चारण, पढ़-पढ़ कर धर्म कमावें !
भाषा का ज्ञान नहीं है, प्राकृत का पाठ रचावें ! ॥ १७ ॥
मुखिया श्रीमान् हमारे, पूजन को द्रव्य पठाते !
पूजा करवा सेवक से, घर बैठे पुण्य कमाते ! ॥ १८ ॥

भण्डार के रक्षक

कहाँ है मंदिर का भण्डार ?
मंदिर के मुखिया बन करके बने पंच सरदार ।
रोकड़ सारी मिली आपको मंदिर की सरकार ॥
बनाया दिल को बड़ा उदार ।

कुछ दिनतो हिसाब समझा कर-किया सत्यसे प्यार ।
फिर ललचाया मन उस पर तो खाया बिना डकार ॥
यही है पक्का मायाचार ।

यदि पंचों ने कहा कभी यह दे दो आप हिसाब।
तब तो आप तमक कर बोले किसकी है यह ताब॥
हमारा है मंदिर भण्डार।

तुम हिसाब के लेने वाले होते कौन जनाब।
हम मंदिर के मालिक मुखिया लेंगे आप हिसाब॥
हुआ था कब ऐसा इकरार।

कल नंगे थे आज सेठ बनने का भरते चाव।
जाओ तुम से बहु देखे हैं बतलावो नहिं ताव॥
व्यर्थ की मत छेड़ो तकरार।

सुन मुखियों की बात पंच सब हो जाते भयभीत।
कारण वे सब दबे हुए हैं गावें उनके गीत॥
हुआ इस ही से वण्टाढार।

कुछ कर्जी होते हैं उनके कुछ हों रिश्तेदार।
कुछ मंदिर के रुपया लेकर बनते तावेदार॥
कहो फिर कैसे होय सुधार।

मुखियो! कुछतो अपने मनमें कर लो सोच-विचार।
क्यों पर भव के लिये पाप का भरते हो भंडार॥
सत्य के बन लो नातेदार।

इस प्रकार से समझाते हैं लेखक-लेक्चरार।
किन्तु नहीं वह जरा तोड़ते अपनी हठ का तार॥
यही मिथ्या अभिमान अपार।

लेख लिखो भाषण भी दे लो कर लो यत्न हजार।
'प्रेम' संगठन शक्ति बिना क्यों कर पाओ उद्धार॥
हृदय का यही सत्य उद्‌गार।

निर्माल्य द्रव्य

देव का द्रव्य सभी निर्माल्य,
द्रव्य कहलाता है स्वयमेव।
उसे छूना तक है हा! पाप,
उसे लेना कैसा अतएव॥१॥
किन्तु उसकी न व्यवस्था ठीक,
इसी से बढ़ता जाता पाप।
चढ़ाता जो है प्रभु के लिये,
हड़प जाता है अपने आप॥२॥
न जब तक होगा इसमें शीघ्र,
उचित नव सुन्दर सुदृढ़ सुधार।
घटेंगे तब तक नहीं कदापि,
कष्ट विपदाएँ अत्याचार॥३॥

विद्यालय

हैं जैन विद्यालय यहाँ पर पूर्वजों के भाग्य से।
मिलते नहीं हैं कार्यकर्त्ता योग्य हा! दुर्भाग्य से॥

सौभाग्य से यदि कार्य वाहक योग्य मानव है जहां ।
वह क्या अकेला कर सकेगा द्रव्य जब कि न हो वहां ॥ १ ॥
श्रीमान् लोगों का न इनकी ओर किंचित लक्ष है ।
करते निरीक्षण तक नहीं इनके कि जो अध्यक्ष हैं ॥
बस मुख्य कर्त्ता की वहाँ चलती निरन्तर पोल है ।
बाहर दिखावट खूब है अन्दर निरन्तर ढोल है ॥ २ ॥
है द्रव्य की कमती बढ़ी अखवार में छपवायेंगे ।
जनता समक्ष न कार्य करके भी कभी बतलायेंगे ।
क्या व्योम भेदी बिल्डिगों से संस्था का नाम है ।
पर प्रिय न कृत्रिमता कहीं प्यारा जगतको काम है ॥ ३ ॥
आता प्रचुर रोना हमें विद्यालयों के काम से ।
होते दुखी बहु छात्र हा! आजीविका के नाम से ॥
पंडित निकलते जारहे पर है जगह खाली कहाँ ?
निजपेट भरना भी उन्हें हा! होरहा मुश्किल महा ॥ ४ ॥

यूनिवर्सिटी

एक शिक्षा ही जगत में ज्ञान का भण्डार है ।
और ऊंची सभ्यता उसका विमल उपहार है ॥
सच्चरित्राचार और विचार की यह खान है ।
प्रेम-संयम-शक्ति-ज्ञान विकाश इसका दान है ॥ १ ॥
किन्तु यह होगा तभी जब पूर्ण बल विस्तार हो ॥
और शिक्षा पर हमारा पूर्णतः अधिकार हो ॥

हो निजी तालीम इस सब का यही अभिप्राय है।
और यह "युनिवर्सिटी" इसका महान उपाय है॥ २॥
पर यहाँ कितनी दफ़ा ही प्रश्न इसका उठ चुका।
शोक! पर वह प्रश्न ज्यों का त्यों पड़ा अबतक रुका॥
आज इसके हेतु धन का पूर्ण टोटा हो गया।
लार्ड कर्जन का कहा वह लक्ष्मी बल खोगया॥ ३॥
हम प्रदर्शन के लिये लाखों बहा देंगे अभी।
स्वप्न मध्य न नाम पर उपकार का लेंगे कभी॥
वे हताशा खर्च कर गज-रथ अनेक चलायंगे।
किन्तु जीवन-ज्योति से निजको अमर न बनायंगे॥ ४॥
सिर्फ छै ही लाख जिनकी विश्व में तादाद है।
आज उनके पास भी युनिवर्सिटी प्रासाद है॥
किन्तु ग्यारह लाख भी हम आज तेरह-तीन हैं।
और शिक्षा के लिये हम दूसरों के दीन हैं॥ ५॥
दानवीर अवश्य हम पर ज्ञानवीर नहीं रहे।
नीर-क्षीर विवेक में हम नीर ही बन कर बहे॥
आप शिक्षा दान दे अज्ञान बन्धन काटिये।
अन्यथा यह "दानवीरी" मधु लगा कर चाटिये॥ ६॥

ब्रह्मचर्याश्रम

जरूरत तो है हाँ ब्रह्मचर्य—
आश्रम की ही आज प्रधान।

युवक जिसमें रह कर हो सभ्य,
सुसंस्कृत-शिक्षित-दृढ़-बलवान ॥ १ ॥
कला-कौशल-विज्ञान-विवेक,
पढ़े सेवा में पाठ विराट् ।
जाति के बन्धन कुटिल-कराल,
सदा के लिये स्वयं दे काट ॥ २ ॥
नहीं पर तनिक किसी का ध्यान,
हो रहा है देखो इस ओर ।
व्यर्थ के और अडंगों बीच,
व्यर्थ ही लगा रहे हैं जोर ॥ ३ ॥
संस्था तो है पर कुछ नहीं,
आज तक काम हो रहा सफल ।
स्वार्थ-वस क्योंकि खलों ने वहाँ,
बना रक्खा है अपना दखल ॥ ४ ॥

अनाथालय

अनाथालय समाज के लिये,
वास्तव में है हितकर यत्न ।
अनाथों की रक्षा के लिये,
सफल सुन्दर है यही प्रयत्न ॥ १ ॥
दीन-दुखिया-असहाय-अबोध,
बालकों की रक्षा का भार ।

बड़ी तत्परता से संलग्न,
कर रहे हैं साधन अनुसार ॥ २ ॥
किन्तु हो रहे हैं द्रव्य के बिना,
और सेवा हित में असमर्थ।
चाहिये इनको देकर द्रव्य,
बनाना उन्नति युक्त समर्थ ॥ ३ ॥
तभी तो आशा है अविलम्ब,
करेंगे यह अवश्य कुछ काम।
अन्यथा, वर्तमान की सदृश,
रहेगी अवनति गति निशि-याम् ॥ ४ ॥

विधवाश्रम

जाति की असहाय विधवायें न पापार्जन करें।
किन्तु जीवन शील-संयम-सत्य का यापन करें॥
धर्म की उत्पन्न हो विधवाश्रमों में भावना।
इसलिये इनकी हुई होगी यहाँ पर स्थापना ॥ १ ॥
किन्तु इनको आज घोर प्रपंच-नागों ने डसा।
कौन जो वर्णन करे विधवाश्रमों की दुर्दशा॥
आज भण्डा-भोड़ इनके हो रहे हैं सर्वथा।
आगरे-दिल्ली-बनारस की नई ही है कथा ॥ २ ॥
नारियों के प्रति न जो ईमानदार कभी रहे।
आश्रमों के आज मैनेजर वही जाते कहे॥

आड़ में उद्धार की व्यभिचार करते हैं सखे !
आज आश्रम स्वार्थियों ने 'वर्क-शाप' बना रखे ॥ ३ ॥
कोरि-ढ़ेड़-चमारियाँ तक आश्रमों में खेंचते।
जैन बतलाकर उन्हें लम्बी रकम पर बेंचते ॥
लड़कियों के नाक-नकशे पर बताते "रेट" हैं।
यह बिना पूँजी-रकम की कम्पनी लिमिटेड है ॥ ४ ॥
इन कलंकों पर हमें कुछ शर्म करना चाहिये।
यदि हया कुछ है हमें तो डूब मरना चाहिये ॥
क्रान्ति से पाखण्ड-तम का दुर्ग ढाना चाहिये।
इन कलङ्कों की प्रथाओं को मिटाना चाहिये ॥ ५ ॥

पुस्तकालय

पुस्तकालय है तो यह ठीक,
श्रेष्ठ ज्ञानोपार्जन का स्थान।
सरल-साहित्य प्रचारक सफल,
शान्त एकान्त और अम्लान ॥ १ ॥
किन्तु कुछ हो न किसी से भेद,
तभी हो सकता है कल्यान।
नहीं तो व्यर्थ चलाना भूल,
भूल है हां कोरा अज्ञान ॥ २ ॥

व्यायामशालाएँ

नाम व्यायाम शाला रख लिया,
काम पर है कुछ भी तो नहीं।
आज तक बना सकी क्या एक,
जाति में पहलवान भी कहीं ? ॥ १ ॥

न सुधरा सकीं किसी का स्वास्थ्य,
न साहस का ही हुआ प्रचार।
जाति के जर्जर-तन में तनिक,
न आया जीवन का संचार ॥ २ ॥

शक्ति का कभी न प्रगटित हुआ,
आज तक कोई भी शुभ काम।
विजय पाकर हो सका न एक,
सफल अथवा किञ्चित सर नाम ॥ ३ ॥

व्यर्थ ही टीम-टाम कर नाम,
चलाने में क्या है अब धरा।
अगर करना ही है कुछ काम,
सार्थ पुरुषार्थ करो तो ज़रा ॥ ४ ॥

औषधालय

औषधालय है यद्यपि ठीक,
पुण्य संचय का एक प्रकार।

नहीं तद्यपि होता कुछ सफल,
काम अथवा संगठित प्रचार ॥ १ ॥
क्योंकि उसमें भी रहती तनिक,
स्वार्थ की बू सचमुच अवशेष ।
जो कि बाधा देती है सदा,
पूर्ण करने में निज उद्देश ॥ २ ॥
ढंग में इनके किञ्चित सद्य,
किया परिवर्तन जाये योग्य ।
प्राप्त हो यश जिससे सर्वत्र,
और जीवन भी हो आरोग्य ॥ ३ ॥
नहीं उपयोगी है यह दिशा,
रहें केवल औषधि-आगार ।
हमें तो आवश्यक है आज,
औषधालय गुण के भण्डार ॥ ४ ॥

धर्मशालाएँ

धर्मशालाएं हमारी जाति मध्य अपार हैं ।
किन्तु वह अधिकांश में उपयोगिता से पार हैं ॥
एक आवश्यक जहाँ उस ठौर तो दश-पाँच हैं ।
किन्तु आवश्यक थलों पर नग्नता का नाच है ॥ १ ॥
खैर ! यह अविशेष है यह बात जाने दीजिये ।
अब जरा संक्षेप में कुप्रबन्ध वार्ता लीजिये ॥

धर्मशाला के बनाने हेतु तो धन-धाम हैं।
किन्तु फिर उसकी व्यवस्था का न लेते नाम हैं॥ २॥
यदि कहीं सौभाग्य से करते धनाढ्य प्रबन्ध है।
तो वहाँ सुप्रबन्ध की आती कदापि न गन्ध है॥
जिन जमादारों-मुनीमों का वहाँ अधिकार है।
मानिये वह "लाट साहब" का नया अवतार है॥ ३॥
यात्रियों से बात सीधे मुख कभी करते नहीं।
झिड़कियाँ देते हुए वह रञ्च भी डरते नहीं॥
जाइये यदि सर्वथा खाली पड़ी में भी कहीं।
तो प्रबन्धक सिर हिला बतलायंगे कि 'जगह नहीं'॥ ४॥
कोठरी के प्रश्न पर करते महा उत्पात हैं।
बीस व्यर्थ पड़ी रहें देना मगर अपघात है।
सेठजी संयोग से यद्यपि पधारेंगे कभी?
तो मिलेंगे हाथ जोड़े दृग बिछाये यह सभी॥ ५॥
सेठ जी इस नम्रता का यह लगाते भाव हैं।
यात्रियों के साथ में होता यही बर्ताव है॥
किन्तु इनके पीठ पीछे की असम्भव है कथा।
धर्मशाला यात्रियों के हेतु है मानो व्यथा॥ ६॥
इसलिये हे जैनियो! उपयोगिता पहिचानिये।
ठीक आवश्यक अनावश्यक विषय को जानिये॥
धर्मशाला के प्रबन्धों पर नितान्त विचारिये।
धर्मशाला का महत्त्व न व्यर्थ ही संहारिये॥ ७॥

तीर्थों के झगड़े

भगवान् सम ही पूजते हैं भक्त तीर्थ-स्थान को।
पाया यहाँ से पूज्य पुरुषों ने परम निर्वाण को॥
इन तीर्थ क्षेत्रों में सदा सुख-शान्ति मिलती है बड़ी।
पल मात्र में इनमें बिखरती दुःख पापों की लड़ी॥ १॥

अब तीर्थ क्षेत्रों के लिये बढ़ता सदा ही बैर है।
करना पड़े अब नित्य "प्रीवी-कौंसिलों" की सैर है॥
यह जाति सारी शक्तियोंसे तो प्रथम ही भ्रष्ट है।
जो शक्ति कुछ अवशेष है उसका मिटाना इष्ट है॥ २॥

भगवान् के उपदेश की आती न हमको याद है।
न्यायालयों में द्रव्य कितना हो रहा बरबाद है॥
मानें नहीं ये स्वप्न में भगवान् के उपदेश को।
निशि-दिन बढ़ाते जायंगे यह सङ्कटों को क्लेश को॥ ३॥

यों अब विपक्षी वृन्द निज सत्ता जमाना चाहते।
वे तीर्थ-क्षेत्रों को सबल पैत्रिक बनाना चाहते॥
नित छीनते जाते हमारे क्षेत्र के अधिकार को।
नीचा दिखाना चाहते हैं वे हमें संसार को॥ ४॥

हा! दुख भरी सुनकर कथा आँसू गिरेंगे नेत्र से।
सत्कर्म के बदले कमाया पाप तीर्थ-क्षेत्र से॥
डरते नहीं अब बन्धु अपने बन्धुओं के घात से।
अपवित्र केशरिया किया है घोर शोणित पात से॥ ५॥

आता नहीं जिनको हमारे धर्म का कुछ जाँचना।
आश्चर्य है हम न्याय की करते उन्हीं से प्रार्थना ॥
मार्जार द्वय का देख लो क्या न्याय बन्दर ने किया।
आहार उनका दक्षता से शीघ्र उसने हर लिया ॥ ६ ॥
लड़ते जहाँ 'दो' तीसरे करते फतह घर का किला।
जयचन्द्र के ही द्वेप से तो राज्य यवनों को मिला ॥
सम्प्रीति हम तो धर्म साधन तक नहीं अब जानते।
भूले अहिंसा तत्त्व तक उसको न कुछ पहचानते ॥ ७ ॥
जिस काल सारे विश्व में बढ़ती दिखाती एकता।
उस काल हममें बढ़ रही है मूर्खता अविवेकता ॥
दोनों दिगम्बर और श्वेताम्बर प्रभू के पुत्र हैं।
क्यों बन रहे हैं आज वे ही तीर्थ कारण शत्रु हैं ॥ ८ ॥
हैं तीर्थ जग में प्राणियों को तार देने के लिये।
संग्राम क्षेत्र बने वही नर मार देने के लिये ॥
हम चेतते अब भी न इस अज्ञान का कुछ पार है।
इस पामरोचित प्रवृत्ति पर जग दे रहा धिक्कार है ॥ ९ ॥

जीर्णोद्धार

लार्ड! कर्जन तक तुम्हें धनवान व्यापारी कहें।
पर तुम्हारे तीर्थ-मन्दिर यों उजाड़ पड़े रहें ॥
आप ही सोचो जरा क्या यह तुम्हें स्वीकार है।
विश्व इस ऐश्वर्य पर देगा न क्या धिक्कार है ? ॥ १ ॥

हा ! हमें रोते रहें यह क्षेत्र टूटे ही पड़े।
किन्तु हम करते रहें गढ़ कर नये मन्दिर खड़े॥
अन्न जिनको चाहिये वह तो विलख भूखों मरें।
और हम धर्मात्मा भूखे नये पैदा करें॥ २॥

गत कलंकों का प्रथम प्रतिशोध होना चाहिये।
और नव निर्माण का गतिरोध होना चाहिये॥
सामयिक वातारावरण का बोध होना चाहिये।
पूर्ण जीर्णोद्धार का अनुरोध होना चाहिये॥ ३॥

हम समर्थन कर रहे इस हेतु जीर्णोद्धार का।
चिह्न है यह पूर्वजों की कीर्तियाँ विस्तार का॥
एक वह थे आपके हित कीर्ति-शैल खड़ा किया।
एक तुम हो कर नहीं सकते मरम्मत की क्रिया॥ ४॥

अस्तु जीर्णोद्धार के कर्त्तव्य का पालन करें।
और निज भण्डार में यह धर्म-यश अक्षय भरें॥
क्षेत्र खण्डित हैं यदपि खण्डित हमारा मान है।
शोक पर किञ्चित न अब इस पर हमारा ध्यान है॥ ५॥

आज जो खण्डित दशा में कीर्तियाँ अवशेष है।
अब उचित उनके लिये करना विलम्ब न लेश है॥
आज जीर्णोद्धार से वह नव्य-जीवन पायँगी।
अन्यथा यह शीघ्र ही मिस्मार सब हो जायँगी॥ ६॥

शिक्षा

उत्कृष्ट शिक्षा में हमारा हो रहा नित ह्रास है।
अकलङ्क जैसी बुद्धि क्या अब वह हमारे पास है ॥
क्या शास्त्र अथवा धर्म ग्रन्थों में हमें श्रद्धा रही।
सद् ज्ञान-बुद्धि-विवेक की निधि आज जल बन कर बही॥१
बस एक इंग्लिशमें रहा अब तो हमें श्रद्धान है।
गत पीढ़ियों का अब इसी में जानते उत्थान है ॥
पच्चीस की भी नौकरी मिलना न अब आसान है।
पर जैन दृग मूँदे इसी पर हो रहे बलिदान है ॥ २ ॥
हो काम के लायक यदपि तो भी न कोई हर्ज है।
लेकिन यहाँ पर तो नकलचीपन पुराना मर्ज है ॥
यह मूँद कर दृग एक ही लाइन सभी अपनायँगे।
चिन्ता नहीं हम अन्त में कुछ भी नहीं रह पायँगे ॥ ३ ॥
यह दोष युत शिक्षा-प्रणाली के यहाँ व्याघात है।
फैशन--गुलामी--वैमनस्य-अप्रेम-वज्राघात है ॥
बेकारियों से आत्म-हत्या हो रही दिन-रात है।
होगी न शिक्षा ठीक तो होगा न स्वर्ण-प्रभात है ॥ ४ ॥

वर्तमान-धर्म

पतित-पावन उद्धारक आप,
तुम्हारे सब सिद्धान्त महान् ।

विश्व में है सब से ही दिव्य
अनोखा स्याद्वाद अम्लान ॥ १ ॥
न तुममें है कुछ भी विपरीत,
सभी सुन्दर है—है ज्ञातव्य ।
नियम-उपनियम-नीति-विज्ञान,
वस्तुत: है सब कुछ ही भव्य ॥ २ ॥
किन्तु हो रहे आज तुम व्यस्त,
धूर्त कुछ मिला रहे हैं खोट ।
चाहते फैलाना अतिचार,
तुम्हारी ही लेकर के ओट ॥ ३ ॥
कर रहे हैं परिवर्तन नव्य,
स्वयं चल कर तुमसे प्रतिकूल ।
तुम्हारे मृदु अन्तर में हाय !
निरन्तर बिछा रहे हैं शूल ॥ ४ ॥
तुम्हें वे करते हैं बदनाम,
घोर—अज्ञानी–निंद्य—कृतघ्न ॥
तुम्हारे उन्नत पथ में आज,
उपस्थित करते हैं वे विघ्न ॥ ५ ॥
पर न कुछ होगा निश्चय यही,
अरे इन लोगों से विश्वास ।
तुम्हारा होगा सत्वर मंजु,
सूर्य-सा उज्ज्वल प्रखर-प्रकाश ॥ ६ ॥

भक्ति

हमारी दिव्य-भक्ति का मूल्य,
रहा अब कुछ न विश्व के बीच।
क्योंकि पा जाते आकर यहाँ,
गुरुत्व नर महा नीचसे नीच ॥ १ ॥

झुका हम सिर देते हैं सदा,
भक्ति-श्रद्धा का करके अन्त।
ढोंग के आकर्षण में आज,
भक्ति की हत्या है हा! हन्त ॥ २ ॥

नहीं पाता था कोई गैर,
हमारी भक्ति महा अनमोल।
लुटा हम आज रहे अज्ञान,
कोड़ियों के ही उसको मोल ॥ ३ ॥

भला कैसे हो तब उद्धार,
पतन निश्चय है निश्चय पतन।
भक्ति-वैभव सब ही लुट रहा,
नहीं हम करते फिर भी जतन ॥ ४ ॥

पर्व

रह गये हैं पर्व भी अब तो हमारे नाम को।
प्राप्त कर सकते न इनमें शान्ति-सुख-विश्राम को ॥

प्रकट में दश धर्म व्रत उपवास आदिक पालते।
किन्तु इनके नाम पर बेगार केवल टालते॥ १॥
मन्दिरों में पर्व पर आकर कदापि न झाँकते।
धर्म प्रश्नों पर समय के मूल्य को यह आँकते॥
यदि इकट्ठे भी कभी सौभाग्य से हो जायँगे।
तो घरू झगड़े उठा गाली-गलौज मचायँगे॥ २॥
तत्व-चर्चा धर्म शास्त्र श्रवण इन्हें अज्ञात है।
प्रेम और पवित्रता मानों असम्भव बात है॥
वृद्ध तो कहते हुआ, अस्त जिन-मार्तण्ड है।
नौ जवानों के लिये तो धर्म ही पाखण्ड है॥ ३॥
यदि पराकाष्ठा हुई तो खर्च कुछ भाड़ा किया।
एक पगड़ी बंध पण्डित को वहाँ बुलवा लिया॥
बस हमारे पर्वराज बहुत सहल ही मन गये।
कुछ टकों में स्वार्थ वा परमार्थ दोनों बन गये॥ ४॥

दुखियों की दशा

दुखड़ों की भरमार यहाँ सुख-साज नहीं है।
किसका गो-रस भात मुष्टि-भर नाज नहीं है॥ १॥
झटकें चिथड़े धार-धुले पट पास नहीं हैं।
कुनबे भर में कौन अधीर-उदास नहीं हैं॥ २॥
मक्की-मटरा-मोंठ भुनाय चबा लेते हैं।
अथवा सूखे रोट नमक से खा लेते हैं॥ ३॥

सत्तू-दलिया-दाल-पेट में भर लेते हैं।
गाजर-मूली पाय कलेवा कर लेते हैं ॥ ४ ॥
बालक चोखे खान-पान को अड़ जाते हैं।
खेल-खिलौने देख पिछाड़ी पड़ जाते हैं ॥ ५ ॥
वे मनमानी वस्तु न पाकर रो जाते हैं।
हाय ! हमारे लाल सुबकते सो जाते हैं ॥ ६ ॥
घर में कुरते-कोट-सलूके सिल जाते हैं।
उजरत के दो-चार टके यों मिल जाते हैं ॥ ७ ॥
जब कुछ पैसे हाथ शाम तक आ जाते हैं।
तब उनका सामान मंगाकर खा जाते हैं ॥ ८ ॥
लड़के लकड़ी बीन-बीन कर ला देते हैं।
ईंधन भर का काम अवश्य चला लेते हैं ॥ ९ ॥
वृद्ध चचा जल डोल घड़ों से भर देते हैं।
मांग-मांग कर छाँछ महेरी कर देते हैं ॥१०॥
छप्पर में बिन बांस घुने ऐरण्ड पड़े हैं।
बरतन का क्या काम घड़ों के खण्ड पड़े हैं ॥११॥
खाट कहाँ दस-बीस फटे से टाट पड़े हैं।
चकिया की भिड़ फोड़ पटीले पाट पड़े हैं ॥१२॥

हमारी दुर्दशा

हा ! हा !! हमारी दुर्दशा प्रति दिन बिगड़ती जा रही।
वह पूर्व ज्ञान रहा न अब हम पर अविद्या छा रही ॥

है प्रेम आपस में नहीं अब स्वार्थपरता बढ़ गई।
नव बेल हम पर द्वेष और असंयमों की चढ़ गई॥ १॥
भाई हमारे मर रहे भूखे हमें चिन्ता नहीं।
क्या सत्य हम ज़िन्दा सदा इस भाँति रह सकते कहीं ?
नित दासता ही दूसरों की अब हमें स्वीकार है।
जीवन नहीं यह भार है इस भार पर धिक्कार है॥ २॥
केवल उपन्यासादि के हम आज इच्छुक हो गये।
प्राचीन नय इतिहास के ज्ञाता सदा को सो गये॥
बल-बुद्धि-वैभव-ज्ञान से नित हीन होते जा रहे।
अज्ञान-सागर में पड़े हम नित्य गोते खा रहे॥ ३॥
नित फांसने को दूसरे असहाय हमको जान के।
अपने बिछाते जाल हैं अज्ञान पक्षी मान के॥
यद्यपि यही आगे रहा तो एक दिन वह आयगा।
जब जैनियों का नाम भी संसार से मिट जायगा॥ ४॥

कायरता

हमारी कायरता का हन्त !
नहीं है कुछ भी पारावार।
हमारे ही सन्मुख तो अरे,
लुट रहे हैं अपने घर वार॥ १॥
देव का होता है अपमान,
और शास्त्रों की उड़ती धूल।

उत्सवों के पथ में विकराल,
बिछाये जाते तीखे शूल ॥ २ ॥
मन्दिरों में होता है नित्य,
चोर बदमाशों का उत्पात ।
विधर्मी करते रहते प्राय,
धर्म-धन-जीवन पर आघात ॥ ३ ॥
नहीं उनका कर पाते कभी,
बाल बांका या कुछ प्रतिकार ।
बहा लेते हैं बस चुपचाप,
दशा पर रोकर आँसू चार ॥ ४ ॥
यदि इस कायरता का अन्त,
संगठन करके हमने किया !
आज के इस युग में फिर कहीं,
हमारा रहना तो हो लिया ॥ ५ ॥

मूर्खता

बढ़ रही प्रतिपल है उफ! आज,
मूर्खता घर-घर में सानन्द ।
नष्ट कर सद्-विवेक अभिराम,
विचरती है होकर स्वच्छन्द ॥ १ ॥
निजी आकर्षण का विष-रूप,
विकृत सा उन्नत तान-वितान ।

कुटिल अभिप्रायोंसे हँस-विहँसि,
बुद्धि का करती है अपमान ॥ २ ॥
स्वच्छ भावों को दे संत्रास,
हृदय पर और मोहनी फूँक।
सतत करती विरूप तम म्लान,
अभागी भावुकता के टूँक ॥ ३ ॥
इसी का तो यह है परिणाम,
जाति का जीवन जर्जर अन्त।
समझ कर भी तो सब सो रहे,
इसी का तो दुख है हा ! हन्त ॥ ४ ॥

वैमनस्यता

जैनो ! जैनजगत में तुमने, दिखलाया है अनुपम त्याग।
अपनी अपनी ढपली लेकर, गाते फिरते अपना राग ॥ १ ॥
मिलन-रागिनी भूल गये हो, छेड़ रहे हो फूट-विहाग।
इससे यही विदित होता है, उलटा आज हमारा भाग ॥ २ ॥
मालुम है यह भूल तुम्हें, अब क्या करके दिखलायेगी।
जैन-जाति को जैन-धर्म को बलि के धाम पठायेगी ॥ ३ ॥
जब ऐसा हो जायेगा तो फिर आँखें खुल जायेंगी।
हठ-धर्मी ये सभ्य मूर्तियां कर मल-मल पछतायेंगी ॥ ४ ॥
जैनो ! इससे नम्र निवेदन आप सभी स्वीकार करो।
चौरासी के चक्कर तज कर जैन जाति से प्यार करो ॥ ५ ॥

हो जाओ सब एक सज्जनों यद्यपि करना है उद्धार।
जैन जाति की अनुपम महिमा देखे जिससे सब संसार ॥ ६ ॥

दारिद्र्य

हा! दरिद्रता निश-दिन हमको सता रही है।
अवनति गति की दशा हमारी बता रही है ॥ १ ॥
आकुलता की अग्नि हृदय को जला रही है।
चिन्ता-चिता समान हमें नित जला रही है ॥ २ ॥
हैं ऐसे अधिकांश द्रव्य से हीन विचारे।
उदर-देव के लिये भटते दर-दर मारे ॥ ३ ॥
जो पीते थे कभी सुखामृत के शुभ प्याले।
उन मनुजों के पड़े आज भोजन के लाले ॥ ४ ॥
आज अनेकों जैन नौकरी जो करते हैं।
तो भी अपना उदर नहीं पूरा भरते हैं ॥ ५ ॥
वह वेतन की आय खर्च सारी हो जाती।
निज कुटुम्ब की चिन्ताऐं रात-दिन उन्हें सताती ॥ ६ ॥
हो उन्नत व्यापार तथा आहार मधुर हो।
वस्त्रा भूषण मिलें हर्ष आमोद प्रचुर हो ॥ ७ ॥
बच्चे ब्याहे जायँ घरों में बहुएं आवें।
हो सम्पत्ति अपार नहीं आपत्ति सतावें ॥ ८ ॥
यह सब मन का भाव सदा मन में रहता है।
एक द्रव्य के बिना हृदय सब कुछ सहता है ॥ ९ ॥

रात-रात भर नींद नहीं नैनों में आती।
आह! खींचते उन्हें निशा पूरी हो जाती ॥१०॥
द्रव्य ग्यारवाँ प्राण नहीं जब यह होता है।
मानव हो असमर्थ ठोकरें खा रोता है ॥११॥
पूँजीपति ही हा! दरिद्रता को उपजाते।
साम्यवाद के आज इसी से सब गुण गाते ॥१२॥

धनवाद

धंसने लगा ही था धरा में जब जैन धर्म,
ध्येय था भुलाया ध्रुव ढोंग ने प्रमाद ने।
धर्मंग-धुरीण-धुनी साधु की धमनियों में,
रक्त था धुँकाया उस यातना की याद ने॥
धारण किया था व्रत स्थापित समाज का,
धज्जियां उड़ाईं कुपथों की स्याद्वाद ने।
किन्तु उस वीर की विशुद्ध निर्भीक लीग,
धरके दबाई आज हाय! धनवाद ने॥ १ ॥
वीर का विशुद्ध मूल मन्त्र था स्वराज्य प्राप्त,
चिन्तित किया था उन्हें दासता-विषाद ने।
लेकर समाज-धर्म-राजनीति एक साथ,
जग को जगाया उसके ही सिंहनाद ने॥
परतन्त्रता को घोर पाप ही बताया सदा,
उनको भुलाया नहीं व्यर्थ के विवाद ने।

किन्तु धर्म पोषक है केवल समाज यह,
ऐसा कहलाया आज भीरु धनवादने ॥ २ ॥

गन्धर्व

कमाने की चिन्ता हो गई,
क्यों कि हैं जैनों के गन्धर्व ।
मौज जीवन भर है निश्चिन्त,
सतत ही वर्तमान है पर्व ॥ १ ॥
सदा आते-जाते सकुटुम्ब,
कहीं भी इन्हें नहीं है रोक ।
कौन हैं ये ? जाने भगवान्,
विदित कर सके न हम भी शोक ॥ २ ॥
जानते हैं गाना कुछ नहीं,
पकड़ भर कर में लिया सितार ।
चीखने लगे और बेढङ्ग,
जोर से अपना मुँह बस फार ॥ ३ ॥
यही है इनमें कला विशेष,
नहीं है इनको कुछ भी ज्ञान ।
समझ लेना ये हैं दुश्वार,
जैन हिन्दू कि या मुसलमान ॥ ४ ॥
खैर, कुछ भी हो इससे नहीं,
वेष सब उनका है अज्ञात ।

वेष में इनके हो तो नहीं,
नित्य करते रहते उत्पात ॥ ५ ॥
सँभलना होगा इनसे सद्य,
और करना होगा हा ! बन्द ।
द्रव्य का दुरुपयोग कर नित्य,
बनो मत मूर्ख और मतिमन्द ॥ ६ ॥

शिक्षा-संस्थाओं से

तुम्हारा है उद्देश्य विशेष,
किन्तु परिणाम नहीं कुछ ठीक ।
पीटती जाती हो तुम क्योंकि,
आज भी वही पुरानी लीक ॥ १ ॥
कला-कौशल तुम में है नहीं,
नहीं तुम में है कुछ विज्ञान ।
तरसते हैं बस तुमसे निकल,
नौकरी करने को विद्वान ॥ २ ॥
ग्रन्थ रटवा देना बस अलम्,
बना रक्खा है तुमने लक्ष्य ।
इसी से है व्यवहार विहीन,
छात्र हैं और नहीं कुछ दक्ष ॥ ३ ॥
बदलना होगा पर यह ढङ्ग,
नहीं चलने का ऐसे काम ।

इस तरह तो होंगे बरबाद,
शक्ति-साधन-शुभ अवसर-दाम ॥ ४ ॥
बनाओ अपना उज्वल योग्य,
पूर्ण अब अनुभव युत प्रोग्राम ।
समुन्नत हो जिससे विज्ञान,
विश्व में जगे तुम्हारा नाम ॥ ५ ॥

गजरथ

न बदली अब तक जैन-समाज,
जगत पहुँचा है कितनी दूर ।
जैनियों की हालत को देख,
हृदय हो जाता चकनाचूर ॥ १ ॥
वही है क्रिया-काण्ड का जाल,
रथोत्सव आदिक की भरमार ।
सिंघई बनने का विकट विमोह,
इसी को समझा जग का सार ॥ २ ॥
नहीं खाते हैं जो भर पेट,
वस्त्र भी जिनको नहीं नसीब ।
जोड़ करके थोड़ा सा द्रव्य,
रथोत्सव करते हैं वे जीव ॥ ३ ॥
नौन--गुड़--तेल बेचता कोई,
कोई डट कर लेता है व्याज ।

लूटता विधवाओं को कोई,
नहीं आती है कुछ भी लाज ॥ ४ ॥
किन्तु गजरथ चलवावन सिंघई,
मानते हैं अपने को धन्य ।
यही समझे बैठे वे लोग,
नहीं मुझ सा जग में है अन्य ॥ ५ ॥
नहीं है जिन्हें जाति से प्रेम,
भाड़ में जाये जैन-समाज ।
धर्म का होता हो अपमान,
देश की भी लुटती हो लाज ॥ ६ ॥
किन्तु है उनको पद से मोह,
सिंघई बनने से है बस काम ।
इसी के लिये लोलुपी लोग,
लुटाते अपना द्रव्य तमाम ॥ ७ ॥
नहीं मिलता बच्चों को दूध,
किन्तु यश के इच्छुक रथकार ।
बहाते घी पहियों पर मनों,
कराते पचवन्नी ज्योनार ॥ ८ ॥
जाति के बालक ज्ञान-विहीन,
युवक फिरते रहते बेकार ।
सताई विधवा बहिनें आज,
भटकती विधर्मियों के द्वार ॥ ९ ॥

गजरथी श्रीमानों को नहीं,
तनिक भी उनकी है परवाह।
उन्हें तो सिंघई-सेठ-श्रीमन्त,
आदि बनने की रहती चाह॥ १० ॥

कृषकों का श्राप

कृषकों का हा! गला दबा कर करली खूब कमाई है।
कभी किसी को धोखा देकर रोकड़ बही बढ़ाई है॥ १॥
गल्ले पर ड्योढ़ी बाढ़ी ले करली रकम सवाई है।
जैन बान्धुवो! क्रोध न करना सच्ची बात जताई है॥ २॥
आहों का वह तप्त द्रव्य सन्दूकें भर-भर जोड़ा है।
महावीर के श्रेष्ठ नियम को जैनों तुमने तोड़ा है॥ ३॥
आँसू का भींगा पैसा वह आँसू में ही जाता है।
मृतक-भोज में यह समाज हा! लाडू खूब उड़ाता है॥ ४॥
शादी से मङ्गल कारज में हृदय कृषक का जलता है।
इसी लिये वह जोड़ा पाठक देखा कभी न फलता है॥ ५॥
कितने ही मरते देखा है कितनी ही विधवा होतीं।
कितने का कुपतन देखा है कितनी ही बन्ध्या होतीं॥ ६॥
इसीलिये यह नम्र निवेदन सच्ची करो कमाई तुम।
उन्नति करो आज तो जग में अब तक कीर्ति गमाई तुम॥ ७॥
कृषकों का उपकार करो अब ज्यादा नहीं सताओ तुम।
निज समाज का अपव्यय बान्धव जल्दी दूर हटाओ तुम॥ ८॥

मरण भोज की भेंट

सामाजिक अत्याचारों पर होलो पानी-पानी ।
युक्त प्रान्तके एक नगर की है यह करुण-कहानी ॥
सरल स्वभावी जैनी लाला दीनानाथ-विचारे ।
क्रूर-काल से कवलित होकर असमय स्वर्ग सिधारे ॥ १ ॥
अपने पीछे बीस वर्ष की विधवा पत्नी छोड़ी ।
मानों इस निर्दयी कर्म ने सुन्दर कली मरोड़ी ॥
लाला दीनानाथ थे बहुत साधारण व्यापारी ।
खर्च इसलिये हो जाती थी कमी कमाई सारी ॥ २ ॥
इस कारण ही अपने पीछे अधिक नहीं धन छोड़ा ।
क्रिया-कर्म में खर्च होगया जो कुछ भी था थोड़ा ॥
विधवा अबला "रत्नप्रभा" का रहा न नेक सहारा ।
कैसे होगा बेचारी का आगे हाय गुजारा ॥ ३ ॥
पर समाज के आधीशों का इस पर ध्यान नहीं था ।
मानों पंचायती राज्य में इसको स्थान नहीं था ॥
यह निर्दयी समाज न उसकी कुछ सुध लेती थी ।
बिलख-बिलख कर विधवा पत्नी प्राण दिये देती थी ॥ ४ ॥
सम्पत्ति-सन्तति हीन प्रथम थी पति अब हुआ पराया ।
भोली युवती सब कुछ खोकर हाय हुई असहाया ॥
तिस पर एक नया सङ्कट यह रत्नप्रभा पर आया ।
पञ्चों ने जल्दी नुक्ता करने का हुक्म सुनाया ॥ ५ ॥

एकाएक नये सङ्कट से घबरा गई बिचारी।
नाच गई आँखों में आकर नव भविष्य की ख्वारी॥
सोचा था कुछ जोड़ गांठ जीवन निर्वाह करूँगी।
धर्म-ध्यान रत जैसे होगा पापी पेट भरूँगी॥ ६॥
पर "नुक्ते" के महा शाप ने सब पर पानी फेरा।
आह! अधूरी ही निद्रा में असमय हुआ सवेरा॥
पड़ी और मरती के ऊपर ये दो लातें ज्यादा।
कैसे अब रक्खे समाज में अक्षुण्ण कुल मर्यादा॥ ७॥
आख़िर सब पनहार गई फिर पंचो पर बेचारी।
बड़ी दीनता युत रो-रो करके यह अर्ज़ गुज़ारी॥
पंचराज! मैं हाय लुट गई अशुभ कर्म की मारी।
प्राणेश्वर! मर गये किन्तु हा! मैं न मरी हत्यारी॥ ८॥
जीवन भार पड़ा सिर मेरे इसको ढोने दीजे।
पर इस नुक्ते के कारण मत मेरी ख्वारी कीजे॥
आप सोचिये कैसे सम्भव होगा हुक्म बजाना?
जब कि नहीं है यहाँ पेट तक के भी लिये ठिकाना॥ ९॥
पंचों के आगे बहुतेरी विधवा रोई-धोई।
पर लड्डू-लोलुप पापी दल में न पसीजा कोई॥
सब कुछ कहा दुहाई भी दी किन्तु न कुछ फल पाया।
सिकता थल पर कहो किसी ने भला कभी जल पाया॥ १०॥
बोले पंच पापिनी हमसे अधिक न बात बनाना।
यह प्राचीन धर्म है इसको पड़े ज़रूर निभाना॥

कुशल चाहती है अपनी तो नुक्ता करना होगा ।
वरना दण्ड बड़ा भारी फिर इसका भरना होगा ॥ ११ ॥
अबला समझी खूब दण्ड जो इसको भरना होगा ।
हो समाज से खारिज फिर दर-दर पर फिरना होगा ॥
यही पंच परमेश्वर फिर उल्टा परिणाम निकालें ।
इन्हें न कुछ सङ्कोच पंच यह जो कुछ भी कर डालें ॥ १२ ॥
महा सङ्कटों की सिर पर घन घोर घटा घिर आई ।
मानों हो इस ओर कूप उस ओर भयङ्कर खाई ॥
समझ गई इस पंच कचहरी से जो कुछ होना था ।
व्यर्थ पत्थरों के आगे सिर धुन-धुन कर रोना था ॥ १३ ॥
फिर उठ चली नाट्य-सा करके लापरवाही का ।
कहती गई नाश हो जल्दी इस तानाशाही का ॥
पड़ न अधिक पचड़े में उसने शीघ्र किया यह निर्णय ।
सभी सङ्कटों का कारण है मेरा जीवन निर्दय ॥ १४ ॥
अतः नाशकारी कुप्रथा का इसका अन्त उचित है ।
ईश्वर जाने मुरदे का खा जाने में क्या हित है ?
अस्तु कुँए में कूद पड़ी हो "नुक्ते" से दुःखित मन ।
तनिक देर में अन्त होगया उसका कोमल जीवन ॥ १५ ॥
पता नहीं इस भाँति नित्य ही हा ! कितनी अबलाएें ।
जीवन की बलि चढ़ा चुकी हैं छोड़ करुण गाथाएें ॥
अभी भेंट होंगी कितनी कुछ इसका नहीं ठिकाना ?
कब होगा यह नष्ट-भ्रष्ट पाखण्ड अतीव पुराना ? ॥ १६ ॥

केवल निजी स्वार्थ के कारण सबको तो मत मारो ।
थूकेगा भविष्य हम पर कुछ इस पर ज़रा विचारो ।।
यदि हो बुद्धिमान तो क्या जीवन है यही चितारो ।
सुनो ग़ौर से फिर समाज की बिगड़ी दशा निहारो ।। १७ ।।

सामाजिक सुधार में कुछ इसका अनुराग नहीं है ।
पतितोद्धार ! देशहित !! में भी कुछ भाग नहीं है ।।
आत्म हेतु है क्या जीवन उत्थान किसे कहते हैं ?
कुछ न जानते विश्व प्रेम में किस प्रकार बहते हैं ।। १८ ।।

किया न पर उपकार जाति में कोई भी जीवन भर ।
मरण भोज का कष्ट दे गये घर वालों को मर कर ।।
रहे रूढ़ियों के गुलाम जीवन भर पाप कमाया ।
जैन जाति में जन्म लिये का ख़ूब शुभ्र फल पाया ।। १६ ।।

यद्यपि जाति की हीन दशा देखें जैनेतर भाई ।
शर्म करो सोचो तो होगी कितनी लोग हँसाई ।।
जग में धर्म अहिंसा के जो ध्रुव पालक कहलाते ।
हाय वही भ्रष्टाचारी बन मुर्दों का खा जाते ।। २० ।।

चेतो अगर और कुछ दिन इस नवयुग में जीना है ।
रूढ़ि दास बन विष प्याला निज हाथों से पीना है ।।
यह उज्ज्वलता पर कलङ्क है इसको मुख से त्यागो ।
मरण भोज के मृत्यु-रोग से शीघ्र जैनियो भागो ।। २१ ।।

अन्तिम-अभिलाषा

अय महावीर सन्तान,

पड़े हुए हो कैसे अब तुम, करो जाति उत्थान।
अगर जाति सेवा के हित जो जाँय भले ही प्रान॥
अय महावीर सन्तान॥ १॥

डटे रहो अपने निश्चय पर करो न कुल बदनाम।
ब्रह्मचर्य व्रत रख जग में बस एक बना दो शान॥
अय महावीर सन्तान॥ २॥

इन सत्कर्मों के बदले हम, गावेंगे गुणगान।
वीर-प्रेम में लगन लगा दो, रोज जपो भगवान॥
अय महावीर सन्तान॥ ३॥

जातियता की बीन बजेगी रह जायेगी आन।
निष्कलंक समवीर बने गर, तो रह जावे शान॥
अय महावीर सन्तान॥ ४॥

ओं शान्ति ! ओं शान्ति !! ओं शान्ति !!!

समाप्त